आध्यात्मिक भक्ति सरोवर

जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्ति–र्दिनेदिने।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु भवे भवे॥

रचयिता : पण्डित अभयकुमार जैन

।। भक्ति, अध्यात्म एवं सिद्धान्त की त्रिवेणी ।।

आध्यात्मिक भक्ति सरोवर

रचयिता

पण्डित अभयकुमार जैन

जैनदर्शनाचार्य, देवलाली

: प्रकाशक :

सर्वोदय अहिंसा ट्रस्ट, जयपुर

संस्करण प्रथम - 1000 प्रतियाँ
प्रकाशन तिथि - 21 जुलाई 2024
शुभ अवसर - मंगल शिलान्यास : श्री टोडरमल स्मारक नवीन भवन
न्योछावर राशि - 20 रुपये (पुनः प्रकाशन हेतु)

प्रस्तुत कृति के प्रकाशन एवं प्रसार हेतु प्राप्त सहयोग

21000/– **पण्डित शिखरचन्दजी शास्त्री, निवाई**
5000/– **श्री उल्लासभाई जोबालिया, देवलाली**
5000/– **श्रीमती विजयाताई भिसीकर, हस्ते जयंतभाई भिसीकर**

प्राप्ति–स्थान...

❊ **सर्वोदय अहिंसा**
बी. 180 मंगल मार्ग, बापू नगर, **जयपुर**–15
+91 9785 999100

❊ **तीर्थधाम सिद्धायतन**
श्री गुरुदत्त कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
मु.पो. - **सेंधपा (द्रोणगिरि)** तहसील–बड़ा मलहरा
जिला–छतरपुर (म.प्र.) +91 99776 14254

❊ **श्री आचार्य कुन्दकुन्द दिगम्बर जैन वीतराग विज्ञान मंडल**
पायल वाला मार्केट, द्वितीय मंजिल
बड़ा फुहारा, **जबलपुर**–482002 + 91 94246 65900

❊ **पूज्य श्री कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट**
कहान नगर, लाम रोड, **देवलाली,** नासिक (महा.)

सज्जा/मुद्रण : प्री ऐलविल सन (संजय शास्त्री), जयपुर फोन : + 91 95092 32733

प्रकाशकीय

अध्यात्मरसिक पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री, देवलाली द्वारा रचित भक्तियों का संग्रह ''आध्यात्मिक भक्ति सरोवर'' के रूप में प्रकाशित करते हुए हम गौरव का अनुभव कर रहे हैं।

पण्डित अभयकुमारजी को सोलह वर्ष की अल्प वय में पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं उनके निकटवर्ती विद्वद्वर्य श्री रामजीभाई, खीमचन्दभाई आदि विद्वानों के समागम का पुण्य अवसर प्राप्त हुआ है। डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के निकट रहकर जैन-दर्शन के तलस्पर्शी अध्ययन का अवसर भी उन्हें 1977 से उपलब्ध हुआ है।

इसी के फलस्वरूप उन्होंने अपना समग्र जीवन प्रवचन-लेखन आदि के माध्यम से शासन-प्रभावना में समर्पित किया है। उनके द्वारा रचित भक्ति सरोवर, विविध पूजनों, पंचकल्याणक सम्बन्धी भजनों, अनेक ग्रन्थाधारित विधानों एवं 18 ग्रन्थों के पद्यानुवाद में प्रवाहित अध्यात्म रस से मुमुक्षु समाज लाभान्वित हो ही रहा है।

सर्वोदय अहिंसा ट्रस्ट ने प्राचीन आचार्यों/विद्वानों के अनेक अनुपलब्धप्राय ग्रन्थों को कम्प्यूटराइज्ड करके उनके प्रकाशन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आगे भी कई ग्रन्थ प्रकाशन हेतु तैयार हैं। इसके साथ ही वर्तमान में उपयोगी अनेक विधानों आदि का प्रकाशन भी ट्रस्ट द्वारा निरंतर किया जा रहा है। **सर्वोदय अहिंसा अभियान** के माध्यम से अहिंसा-शाकाहार के प्रचार के क्षेत्र में भी अपूर्व कार्य कर रहा है। साथ ही तीर्थंकरों/आचार्यों की वाणी को प्रतिपादित करनेवाले सिद्धान्तों को सुंदर साज-सज्जा के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है।

यद्यपि पण्डित अभयकुमारजी द्वारा रचित पूजन-विधान-स्तवन आदि का समावेश अन्य प्रकाशनों में भी होता रहता है, परन्तु अनेक साधर्मियों की भावना थी कि उनके निमित्त से जन्मी सभी मौलिक रचनाओं

का एक पृथक् संकलन प्रकाशित किया जाये, ताकि भविष्य में रचनाकार के सम्बन्ध में कोई भ्रम न हों। सुधी पाठक समझ सकेंगे कि सभी रचनाओं में अध्यात्म, भक्ति एवं सिद्धान्त की त्रिवेणी का प्रवाह अक्षुण्ण रूप से विद्यमान है। आधुनिक हिन्दी होने से भाषा में भी सरलता और सहज प्रवाह परिलक्षित होता है।

भक्तियों के साथ ही इसमें चौबीस तीर्थंकर स्तवन, बीस तीर्थंकर स्तवन तथा दशभक्ति, समवसरण स्तुति, दृष्टाष्टक स्तोत्र एवं अपूर्व अवसर के पद्यानुवाद का भी समावेश किया गया है। ये पाठ दैनन्दिन के प्रसंगों में बहुत उपयोगी होते हैं।

आशा है, सम्पूर्ण जैन समाज प्रस्तुत कृति के माध्यम से देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति से लाभान्वित होते हुए सहज शान्ति के मार्ग पर अग्रसर होगा। इस कृति के प्रकाशन हेतु सहयोगी दान-दाताओं के भी हम अत्यन्त आभारी हैं।

समस्त ट्रस्टीगण

सर्वोदय अहिंसा ट्रस्ट, जयपुर

सम्यग्दर्शन का माहात्म्य

संख्य-असंख्य जन्म धारण कर भवसागर को पार करें।
जो नर सम्यग्दर्शन धारें वे समस्त दुःख नाश करें।।

जो अन्तर्मुहूर्त मात्र भी सम्यग्दर्शन प्राप्त करें।
यदि च्युत हो समकित से तो भी नहिं अनन्त संसार भ्रमे।।

- भगवती आराधना, छन्द 55-56

अहोभाग्य

सहज ही जिनभक्ति–पूजन रचें यह अवसर मिला।
देव–गुरु–श्रुत भक्ति का सुरभित सुमन उर–सर खिला।।
भक्ति पूजा स्तवन के पात्र में अब हम सभी।
श्रुत–सिन्धु में सु–स्नान कर चैतन्य–रस पीयें अभी।।

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी की महती कृपा के फलस्वरूप प्राप्त तत्त्वज्ञान, मेरे जीवन की एकमात्र उपलब्धि है। उनकी प्रेरणा से प्राप्त श्रुताभ्यास ने सहज ही मेरे भीतर प्रवचनकार को जन्म दे दिया; परन्तु कभी भक्ति–पूजन–विधान की रचना में भी निमित्त बनूँगा – यह सोचा भी न था।

सन् 2000 में जबलपुर में निर्मित श्री महावीर जिनालय के पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर ब्र. सन्ध्याबेन के प्रोत्साहन से पंचबालयति पूजन की रचना हो गई थी। सन् 1968 में पूज्य गुरुदेवश्री के प्रथम समागम के अवसर पर उनके प्रवचनों के भाव गूँथकर सर्वप्रथम भक्तिगीत ''निज स्वरूप को जानो तो मिट जाये संसार'' और सन् 1969 में ''भगवान आत्मा आनन्दघन है'' गीत भी रचे गये। इसी समय जिनमन्दिर में प्रक्षाल करते समय एक प्रासंगिक गीत की आवश्यकता का अनुभव हुआ और ''निरखो अंग–अंग जिनवर के'' भक्ति का जन्म हो गया।

इन सब रचनाओं में मेरी पूज्य माताजी स्व. भूरीबाई की अव्यक्त प्रेरणा कारण बनी। उन्हें सैकड़ों भजन–पूजन–स्तोत्र आदि कंठस्थ थे और वे मधुर कंठ से सुर–ताल के संगम सहित गाती थीं। उनकी सशक्त प्रेरणा से ही बाल शिक्षण शिविर में सोनगढ़ जाने का प्रथम अवसर प्राप्त हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री की अध्यात्मस्पर्शी वाणी, आध्यात्मिक रचनाओं की योग्यता के विकास में प्रबल निमित्त बनी और उसे सन् 1977 में जयपुर जाने के पश्चात् डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के मार्गदर्शन से और अधिक बल एवं सही दिशा प्राप्त हुई।

समाज में प्रचलित कर्तावाद प्रधान, स्तरहीन और अन्य भक्तियों की नकल पर बनी भक्तियों से वे बहुत चिन्तित और दुखी थे। वे तो आचार्य

समन्तभद्र द्वारा रचित स्वयंभूस्तोत्र जैसी रचनाओं के रसिक थे और ऐसी ही पूजन-भक्तियों का प्रचलन चाहते थे। वे निरन्तर प्रेरणा देते रहते थे कि प्रचलित कर्तावादी भक्तियों का विरोध करने के बजाय जैन सिद्धान्त और अध्यात्म पर आधारित अच्छी-अच्छी भक्तियाँ बनाकर समाज में प्रचलित करे दें तो धारा बदल सकती है। उनकी इसी प्रेरणा के फलस्वरूप सहज ही नई-नई भक्तियों का जन्म होता गया।

उनके इस मार्गदर्शन को पूजन के क्षेत्र में भी साकार करने का अवसर तब मिला, जब आदरणीय राजमलजी पवैया ने आध्यात्मिक विधानों की रचना करना प्रारम्भ किया और उनके सम्पादन आदि का दायित्व सौंपकर आदरणीय नेमीचन्दजी पाटनी एवं डॉ. साहब ने मुझे उनके साथ बैठा दिया। सन् 1998 से छिन्दवाड़ा प्रवास के पश्चात् उनके सान्निध्य में यह कार्य बंद हो गया।

पूजन-विधान में कर्तावाद का प्रवेश न हो, किन्तु भक्तिरस का प्रवाह भी स्खलित न हो और अप्रासंगिक गीतों आदि का समावेश न हो तथा भक्तिभाव भूलकर हम स्वयं उपदेशक न बन जायें - इन बिन्दुओं का ध्यान रखते हुए पूजन-विधान की रचना होती गई और साथ में अनेक मूल ग्रन्थों का पद्यानुवाद भी होता गया। अनेक रचनाओं में डॉ. राकेशजी शास्त्री नागपुर, संजयजी शास्त्री (सर्वोदय अहिंसा) आदरणीय भाईसाहब अशोककुमारजी जबलपुर आदि अनेक साधर्मीजनों की प्रेरणा और सुझाव प्राप्त होते रहे हैं। एतदर्थ सभी सहयोगियों का आभारी हूँ।

इन रचनाओं के माध्यम से मुझे अध्यात्म-रस के परिपाक का भी अवसर प्राप्त होता रहता है, जिसे मैं अपना अहोभाग्य अनुभव करता हूँ। आशा है, पाठकगण भी इनके निमित्त से देव-शास्त्र-गुरु की व्यवहार और परमार्थ भक्ति प्रगट करके शिवपुर-पथ के पथिक बनेंगे।

रविवार, 21 जुलाई 2024

अभयकुमार जैन

देवलाली, नासिक

अनुक्रमणिका

क्या?	कहाँ?
मंगलाचरण : श्री अरहंत सदा	10
देवभक्ति खण्ड	
1. जो मंगल चार जगत में हैं	11
2. रोम-रोम से निकले प्रभुवर नाम	11
3. रोम-रोम पुलकित हो जाय	12
4. पंच परम परमेष्ठी देखे	13
5. मैं महापुण्य उदय से	14
6. वीतरागी देव तुम्हारे	14
7. हे प्रभो! चरणों में तेरे	15
8. निरखो अंग-अंग जिनवर के	15
9. आओ जिनमन्दिर में आओ	16
10. अशरीरी सिद्ध भगवान	17
11. अन्तर में आनन्द आयो	18
12. प्रभुजी अब न भटकेंगे संसार में	18
13. जीयरा जीयरा	19
शास्त्रभक्ति खण्ड	
14. धन्य-धन्य जिनवाणी माता	19
15. धन्य-धन्य वीतराग वाणी	20
गुरुभक्ति खण्ड	
16. है परम दिगम्बर मुद्रा	21
17. निर्ग्रन्थों का मार्ग	21

18. धन्य-धन्य हे गुरु गौतम 22
19. साधु-चरण-वन्दना 23

पंचकल्याणक सम्बन्धी गीत

20. ये महा-महोत्सव पंच-कल्याणक 24
21. आया पंचकल्याणक महान 25
22. स्वागत करते आज तुम्हारा 26
23. शासन ध्वज लहराओ 26
24. मंगलमय मंगलकारी जिन! 27
25. इन्द्र-प्रतिष्ठा कराओ मोरे भैया 28
26. गर्भकल्याणक आ गया 28
27. सेवा गीत - साधर्मी बहनो! सब आओ 29
28. पंखिड़ा ओऽऽऽ पंखिड़ा 30
29. मेरा पलने में झूले ललना 30
30. आनंद अवसर आज, सुरगण आये 31
31. रोम-रोम में नेमिकुँवर 32
32. गिरनारी पर तपकल्याणक 33
33. आनन्द अवसर आयो 33
34. प्रभो! आपकी अनुपम परिणति 34
35. जन-जन को अचरज आयो 34
36. अब विषयों में नाहिं रमेंगे 35
37. विषयों की तृष्णा को 35
38. देवों और मानवों में 36
39. घर-घर आनन्द छायो 37
40. कल्पद्रुम स्तवन 38

41. दिव्यध्वनि वीरा 39

42. शिखर पे कलश चढ़ाओ 40

विविध आध्यात्मिक गीत

43. चैतन्य वन्दना 40

44. निज स्वरूप को जानो 41

45. भगवान आत्मा आनंद घन 42

46. आओ तुम्हें ध्रुवधाम दिखा दूँ 42

47. जो अपना नहीं उसके 43

48. परिणति के स्वर 44

49. तू जाग रे चेतन प्राणी 45

50. आओ रे आओ रे 46

51. शुद्धात्मा का श्रद्धान होगा 46

52. मैं ज्ञान मात्र बस 47

53. पण्डित टोडरमलजी अभिनंदन 48

54. चौबीस तीर्थंकर स्तवन 50

55. विदेहक्षेत्र-स्थित बीस तीर्थंकर स्तवन 52

पद्यानुवाद खण्ड

56. अपूर्व अवसर 54

57. दृष्टाष्टक स्तोत्र 58

58. दशभक्ति संग्रह 60

59. श्री समवसरण स्तुति 75

60. श्री समयसार स्तुति 87

61. पूज्य गुरुदेवश्री अभिनन्दन 88

ॐ

मंगलाचरण

(वीरछन्द)

श्री अरहन्त सदा मंगलमय, मुक्ति-मार्ग का करें प्रकाश।
मंगलमय श्री सिद्ध प्रभू जो, निजस्वरूप में करें विलास।
शुद्धातम के मंगल साधक, साधु पुरुष की सदा शरण हो।
धन्य घड़ी वह धन्य दिवस, जब मंगलमय मंगलाचरण हो।।

मंगलमय चैतन्य स्वरों में, परिणति की मंगलमय लय हो।
पुण्य-पाप की दुखमय ज्वाला, निज-आश्रय से शीघ्र विलय हो।
देव-शास्त्र-गुरु को वन्दन कर, मुक्ति-वधू का त्वरित वरण हो।
धन्य घड़ी वह धन्य दिवस, जब मंगलमय मंगलाचरण हो।।

मंगलमय पाँचों कल्याणक मंगलमय जिनका जीवन है।
मंगलमय वाणी सुखकारी शाश्वत सुख की भव्य सदन है।
मंगलमय सत्धर्म तीर्थ-कर्ता की मुझको सदा शरण हो।
धन्य घड़ी वह धन्य दिवस, जब मंगलमय मंगलाचरण हो।।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरणमय मुक्ति-मार्ग मंगलदायक है।
सर्व पाप-मल का क्षय करके, शाश्वत सुख का उत्पादक है।
मंगल गुण-पर्यायमयी चैतन्यराज की सदा शरण हो।
धन्य घड़ी वह धन्य दिवस, जब मंगलमय मंगलाचरण हो।।

*****

।। देवभक्ति खण्ड ।।

(1) जो मंगल चार जगत में हैं ...

जो मंगल चार जगत में हैं, हम गीत उन्हीं के गाते हैं।
मंगलमय श्री जिनचरणों में हम सादर शीश झुकाते हैं।।टेक।।

जहाँ राग-द्वेष की गन्ध नहीं, बस अपने से ही नाता है,
जहाँ दर्शन-ज्ञान-अनन्तवीर्य सुख का सागर लहराता है।
जो दोष अठारह रहित हुए हम मस्तक उन्हें नवाते हैं
मंगलमय श्री जिनचरणों में हम सादर शीश झुकाते हैं।।1।।

जो द्रव्य-भाव-नोकर्म रहित नित सिद्धालय के वासी हैं,
आतम को प्रतिबिंबित करते जो अजर अमर अविनाशी हैं।
जो हम सबके आदर्श सदा, हम उनको ही नित ध्याते हैं,
मंगलमय श्री जिनचरणों में हम सादर शीश झुकाते हैं।।2।।

जो परम दिगम्बर वनवासी गुरु रत्नत्रय के धारी हैं,
आरम्भ-परिग्रह के त्यागी जो निज चैतन्य विहारी हैं।
चलते-फिरते सिद्धों से गुरु-चरणों में शीश झुकाते हैं,
मंगलमय श्री जिनचरणों में हम सादर शीश झुकाते हैं।।3।।

प्राणों से प्यारा धर्म हमें केवली भगवान का कहा हुआ,
चैतन्यराज की महिमामय यह वीतराग रस भरा हुआ।
इसको धारण करनेवाले भव-सागर से तिर जाते हैं,
मंगलमय श्री जिनचरणों में हम सादर शीश झुकाते हैं।।4।।

(2) रोम-रोम से निकले प्रभुवर नाम ...

रोम-रोम से निकले प्रभुवर नाम तुम्हारा, हाँ! नाम तुम्हारा।
ऐसी भक्ति करूँ प्रभुजी, पाऊँ न जन्म दुबारा।। टेक।।

जिनमन्दिर में आया, जिनवर दर्शन पाया।
अन्तर्मुख मुद्रा को देखा, आतम दर्शन पाया।।
जनम-जनम तक न भूलूँगा, यह उपकार तुम्हारा।।1।।

अरहंतों को जाना, आतम को पहिचाना।
द्रव्य और गुण-पर्यायों से, जिन सम निज को माना।।
भेदज्ञान ही महामन्त्र है, मोह तिमिर क्षयकारा।।2।।

पंच महाव्रत धारूँ समिति गुप्ति अपनाऊँ।
निर्ग्रन्थों के पथ पर चलकर, मोक्ष महल में आऊँ।।
पुण्य-पाप की बन्ध शृंखला, नष्ट करूँ दुखकारा।।3।।

देव-शास्त्र-गुरु मेरे, हैं सच्चे हितकारी।
सहज शुद्ध चैतन्यराज की महिमा, जग से न्यारी।।
भेदज्ञान बिन नहीं मिलेगा, भव का कभी किनारा।।4।।

(3) रोम-रोम पुलकित हो जाय ...

रोम-रोम पुलकित हो जाय, जब जिनवर के दर्शन पाय।
ज्ञानानन्द कलियाँ खिल जाँय, जब जिनवर के दर्शन पाय।।
जिनमन्दिर में श्री जिनराज, तनमन्दिर में चेतनराज।
तन-चेतन को भिन्न-पिछान, जीवन सफल हुआ है आज।। टेक।।

वीतराग सर्वज्ञ देव प्रभु, आये हम तेरे दरबार।
तेरे दर्शन से निज दर्शन, पाकर होवें भव से पार।।
मोह-महा तम तुरत विलाय, जब जिनवर के दर्शन पाय।।1।।

दर्शन-ज्ञान अनन्त प्रभु का, बल अनन्त आनन्द अपार।
गुण अनन्त से शोभित हैं प्रभु, महिमा जग में अपरम्पार।।
शुद्धातम की महिमा आय, जब जिनवर के दर्शन पाय।।2।।

लोकालोक झलकते जिसमें, ऐसा प्रभु का केवलज्ञान।
लीन रहें निज शुद्धातम में, प्रतिक्षण हो आनन्द महान।।
ज्ञायक पर दृष्टि जम जाय, जब जिनवर के दर्शन पाय।।3।।
प्रभु की अन्तर्मुख-मुद्रा लखि, परिणति में प्रगटे समभाव।
क्षणभर में हों प्राप्त विलय को, पर-आश्रित सम्पूर्ण विभाव।।
रत्नत्रय-निधियाँ प्रगटाय, जब जिनवर के दर्शन पाय।।4।।

(4) पंच परम परमेष्ठी देखे ...

पंच परम परमेष्ठी देखे, हृदय हर्षित होता है,
आनन्द उल्लसित होता है, हो... ऽऽऽ सम्यग्दर्शन होता है।। टेक।।
दर्श-ज्ञान-सुख वीर्यस्वरूपी, गुण अनन्त के धारी हैं,
जग को मुक्ति-मार्ग बताते, निज चैतन्य विहारी हैं,
मोक्षमार्ग के नेता देखे, विश्व तत्त्व के ज्ञाता देखे। हृदय।।1।।
द्रव्यभाव नोकर्म रहित, जो सिद्धालय के वासी हैं,
आतम को प्रतिबिम्बित करते, अजर-अमर अविनाशी हैं।
शाश्वत सुख के भोगी देखे, योगरहित निजयोगी देखे। हृदय।।2।।
साधु संघ के अनुशासक जो, धर्मतीर्थ के नायक हैं,
निज-पर के हितकारी गुरुवर, देव धर्म परिचायक हैं।
गुण छत्तीस सुपालक देखे, मुक्तिमार्ग संचालक देखे। हृदय।।3।।
जिनवाणी को हृदयंगम कर, शुद्धातम रस पीते हैं,
द्वादशांग के धारक मुनिवर, ज्ञानानन्द में जीते हैं,
द्रव्य-भाव श्रुत धारी देखे, बीस-पाँच गुणधारी देखे। हृदय।।4।।
निजस्वभाव साधनरत साधु, परम दिगम्बर वनवासी,
सहज शुद्ध चैतन्यराजमय, निजपरिणति के अभिलाषी।
चलते-फिरते सिद्ध प्रभु देखे, बीसआठ गुणमय विभु देखे। हृदय।।5।।

(5) मैं महापुण्य उदय से ...

मैं महापुण्य उदय से जिनधर्म पा गया।।
जिनधर्म पा गया जिनमन्दिर आ गया।।टेक।।

चार घाति कर्म नाशे ऐसे अरहंत हैं।
अनन्त चतुष्टय धारी श्री भगवन्त हैं।।
मैं अरहंतदेव की शरण आ गया।।1।।

अष्ट कर्म नाश किये ऐसे सिद्धदेव हैं।
अष्ट गुण प्रगट जिनके हुए स्वयमेव है।।
मैं ऐसे सिद्धदेव की शरण आ गया।।2।।

वस्तु का स्वरूप बतावे वीतराग-वाणी है।
तीन लोक के जीव हेतु महाकल्याणी है।।
मैं जिनवाणी माँ की शरण आ गया।।3।।

परिग्रह रहित दिगम्बर मुनिराज हैं।
ज्ञान ध्यान सिवा नहीं दूजा कोई काज है।।
मैं श्री मुनिराज की शरण आ गया।।4।।

(6) वीतरागी देव तुम्हारे ...

वीतरागी देव तुम्हारे जैसा जग में देव कहाँ,
मार्ग बताया है जो जग को, कह न सके कोई और यहाँ।। टेक।।

हैं सब द्रव्य स्वतन्त्र जगत में कोई न किसी का काम करें,
अपने-अपने स्वचतुष्टय में सभी द्रव्य विश्राम करें।
अपनी-अपनी सहज गुफा में रहते पर से मौन यहाँ,
वीतरागी देव तुम्हारे जैसा जग में देव कहाँ।।1।।

भाव शुभाशुभ का भी कर्ता, बनता जो दीवाना है,
ज्ञायक भाव शुभाशुभ से भी भिन्न न उसने जाना है।

अपने से अनजान तुझे भगवान बताते देव यहाँ,
वीतरागी देव तुम्हारे जैसा जग में देव कहाँ।।2।।

पुण्य-पाप भी पर आश्रित है, उसमें धर्म नहीं होता,
ज्ञान भावमय निज परिणति से बन्धन कर्म नहीं होता।
निज आश्रय से ही मुक्ति है कहते श्री जिनदेव यहाँ,
वीतरागी देव तुम्हारे जैसा जग में देव कहाँ।।3।।

(7) हे प्रभो! चरणों में तेरे ...

हे प्रभो! चरणों में तेरे आ गये;
भावना अपनी का फल हम पा गये।। टेक।।

वीतरागी हो तुम्हीं सर्वज्ञ हो;
सप्त तत्त्वों के तुम्हीं मर्मज्ञ हो।
मुक्ति का मारग तुम्हीं से पा गये;
हे प्रभु! चरणों में तेरे आ गये।।1।।

विश्व सारा है झलकता ज्ञान में;
किन्तु प्रभुवर लीन हैं निज ध्यान में।
ध्यान में निज-ज्ञान को हम पा गये;
हे प्रभु! चरणों में तेरे आ गये।।2।।

तुमने बताया जगत् के सब आत्मा;
द्रव्यदृष्टि से सदा परमात्मा।
आज निज परमात्म पद पा गये;
हे प्रभु! चरणों में तेरे आ गये।।3।।

(8) निरखो अंग-अंग जिनवर के ...

निरखो अंग-अंग जिनवर के,
जिनसे झलके शान्ति अपार।।टेक।।

चरण-कमल जिनवर कहें, घूमा सब संसार।
पर क्षणभंगुर जगत में, निज आत्मतत्त्व ही सार।।
यातैं पद्मासन विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार।।1।।

हस्त-युगल जिनवर कहें, पर का कर्ता होय।
ऐसी मिथ्याबुद्धि से ही, भ्रमण चतुरगति होय।।
यातैं पद्मासन विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार।।2।।

लोचन द्वय जिनवर कहें, देखा सब संसार।
पर दुखमय गति चार में, ध्रुव आत्मतत्त्व ही सार।।
यातैं नाशादृष्टि विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार।।3।।

अन्तर्मुख मुद्रा अहो, आत्म-तत्त्व दरशाय।
जिनदर्शन कर निजदर्शन पा, सत् गुरु वचन सुहाय।।
यातैं अन्तर्दृष्टि विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार।।4।।

(9) आओ जिनमन्दिर में आओ ...

आओ जिन मंदिर में आओ,
श्री जिनवर के दर्शन पाओ।
जिन शासन की महिमा गाओ,
आया-आया रे अवसर आनन्द का।।टेक।।

हे जिनवर तव शरण में, सेवक आया आज।
शिवपुर पथ दरशाय के, दीजे निज पद राज।।

प्रभु अब शुद्धातम बतलाओ,
चहुँगति दुख से शीघ्र छुड़ाओ।
दिव्य-ध्वनि अमृत बरसाओ।
आया-प्यासा मैं सेवक आनन्द का।।1।।

जिनवर दर्शन कीजिए, आतम दर्शन होय।
मोहमहातम नाशि के, भ्रमण चतुर्गति खोय।।
शुद्धातम को लक्ष्य बनाओ।
निर्मल भेद-ज्ञान प्रकटाओ।
अब विषयों से चित्त हटाओ,
पाओ-पाओ रे मारग निर्वाण का।।2।।

चिदानन्द चैतन्यमय, शुद्धातम को जान।
निज स्वरूप में लीन हो, पाओ केवलज्ञान।।
नव केवल लब्धि प्रकटाओ,
फिर योगों को नष्ट कराओ।
अविनाशी सिद्ध पद को पाओ,
आया-आया रे अवसर आनन्द का।।3।।

(10) अशरीरी सिद्ध भगवान ...

अशरीरी-सिद्ध भगवान, आदर्श तुम्हीं मेरे।
अविरुद्ध शुद्ध चिद्घन, उत्कर्ष तुम्हीं मेरे।।टेक।।

सम्यक्त्व सुदर्शन ज्ञान, अगुरुलघु अवगाहन।
सूक्ष्मत्व वीर्य गुणखान, निर्बाधित सुखवेदन।।
हे गुण अनन्त के धाम, वन्दन अगणित मेरे।।1।।

रागादि रहित निर्मल, जन्मादि रहित अविकल।
कुल गोत्र रहित निष्कुल, मायादि रहित निश्छल।।
रहते निज में निश्चल, निष्कर्म साध्य मेरे।।2।।

रागादि रहित उपयोग, ज्ञायक प्रतिभासी हो।
स्वाश्रित शाश्वत-सुख भोग, शुद्धात्म-विलासी हो।।
हे स्वयं सिद्ध भगवान, तुम साध्य बनो मेरे।।3।।

भविजन तुम-सम निज-रूप, ध्याकर तुम-सम होते।
चैतन्य पिण्ड शिव-भूप, होकर सब दुख खोते।।
चैतन्यराज सुख-खान, दुख दूर करो मेरे।।4।।

(11) अन्तर में आनन्द आयो...

अन्तर में आनन्द आयो, जिनवर दर्शन पायो।
अन्तर्मुख जिनमुद्रा लखकर, आतमदर्शन पायो जी पायो।। टेक।।
वीतराग छवि सबसे न्यारी, भव्य जनों को आनन्दकारी।
दर्शन कर सुख पायो जी पायो, अन्तर में आनन्द आयो।।1।।
पुण्य उदय है आज हमारे, दर्शन कर जिनराज तुम्हारे।
सम्यग्दर्शन पायो जी पायो, अन्तर में आनन्द आयो।।2।।
मेघ घटा-सम जिनवर गरजे, दिव्यध्वनि से अमृत बरसे।
भव-आताप नशायो, नशायो, अन्तर में आनन्द आयो।।3।।

(12) प्रभुजी अब न भटकेंगे संसार में ...

प्रभुजी, अब न भटकेंगे संसार में।
अब अपनी होऽऽऽ अब अपनी खबर हमें हो गई।।टेक।।
भूल रहे थे निज वैभव को, पर को अपना माना।
विष-सम पंचेन्द्रिय विषयों में ही सुख हमने जाना।
पर से भिन्न लखूँ निज चेतन, मुक्ति निश्चित होगी।।प्रभुजी।।
महापुण्य से हे जिनवर अब तेरा दर्शन पाया।
शुद्ध अतीन्द्रिय आनंदरस पीने को चित ललचाया।
निर्विकल्प निज अनुभूति से, मुक्ति निश्चित होगी।।प्रभुजी।।
निज को ही जाने पहचानें निज में ही रम जायें।
द्रव्य-भाव-नोकर्म रहित हो, शाश्वत शिवपद पायें।
रत्नत्रय निधियाँ प्रगटायें, मुक्ति निश्चित होगी।।प्रभुजी।।

(13) जीयरा ... जीयरा ...

जीयरा ... जीयरा ...
जीयरा ... जीयरा ... जीयरा ...
जीवराज उड़ के जाओ सम्मेदशिखर में;
भाव सहित वन्दन करो, पार्श्व चरण में।।टेक।।

आज सिद्धों से अपनी बात हो के रहेगी,
शुद्ध आतम से मुलाकात हो के रहेगी;
रंग रहित राग रहित भेद रहित जो,
मोह रहित लोभ रहित शुद्ध बुद्ध जो।। जीयरा...।।1।।

ध्रुव अनुपम अचल गति जिनने पाई है,
सारी उपमाएँ जिनसे आज शरमाई हैं;
अनन्तज्ञान अनन्तसुख अनन्तवीर्यमय,
अनन्तसूक्ष्म नाम रहित अव्याबाधी है। जीयरा।।2।।

अहो! शाश्वत सिद्धधाम तीर्थराज है,
यहाँ आकर प्रसन्न चैतन्यराज है;
शुरू करें आज यहाँ आत्मसाधना,
चतुर्गति में हो कभी जन्म-मरण ना।। जीयरा।।3।।

।। शास्त्रभक्ति खण्ड ।।

(14) धन्य-धन्य जिनवाणी माता ...

धन्य-धन्य जिनवाणी माता, शरण तुम्हारी आए।
परमागम का मन्थन करके, शिवपुर पथ पर धाए।
माता दर्शन तेरा रे! भविक को आनन्द देता है,
हमारी नैया खेता है।।1।।

वस्तु कथंचित् नित्य-अनित्य, अनेकांतमय शोभे।
परद्रव्यों से भिन्न सर्वथा, स्वचतुष्टयमय शोभे।
ऐसी वस्तु समझने से, चतुर्गति फेरा कटता है,
जगत का फेरा मिटता है।।2।।

नय निश्चय-व्यवहार निरूपण, मोक्षमार्ग का करती।
वीतरागता ही मुक्ति पथ, शुभ व्यवहार उचरती।
माता तेरी सेवा से, मुक्ति का मारग खुलता है,
महा मिथ्यातम धुलता है।।3।।

तेरे अंचल में चेतन की, दिव्य चेतना पाते।
तेरी अमृत लोरी क्या है, अनुभव की बरसाते।
माता तेरी वर्षा से, निजानन्द झरना झरता है,
अनुपमानन्द उछलता है।।4।।

नव-तत्त्वों में छुपी हुई, जो ज्योति उसे बतलाती।
चिदानन्द चैतन्यराज का, दर्शन सदा कराती।
माता तेरे दर्शन से, निजातम दर्शन होता है,
सम्यग्दर्शन होता है।।5।।

(15) धन्य-धन्य वीतराग वाणी ...

धन्य-धन्य वीतराग वाणी, अमर तेरी जग में कहानी।
चिदानन्द की राजधानी, अमर तेरी जग में कहानी।। टेक।।

उत्पाद-व्यय अरु ध्रौव्य स्वरूप, वस्तु बखानी सर्वज्ञ भूप।
स्याद्वाद तेरी निशानी, अमर तेरी जग में कहानी।।1।।

नित्य-अनित्य अरु एक-अनेक, वस्तु कथंचित् भेद अभेद।
अनेकांतरूपा बखानी, अमर तेरी जग में कहानी।।2।।

भाव शुभाशुभ बन्धस्वरूप, शुद्ध चिदानन्दमय मुक्तिरूप।
मारग दिखाती है वाणी, अमर तेरी जग में कहानी।।3।।

चिदानन्द चैतन्य आनन्द धाम, ज्ञानस्वभावी निजातम राम।
स्वाश्रय से मुक्ति बखानी, अमर तेरी जग में कहानी।।4।।

।। गुरुभक्ति खण्ड ।।

(16) है परम दिगम्बर मुद्रा ...

(तर्ज - जहाँ डाल-डाल पर सोने की...)

है परम दिगम्बर मुद्रा जिनकी, वन-वन करे बसेरा,
मैं उन चरणों का चेरा, हो वन्दन उनको मेरा।।
शाश्वत सुखमय चैतन्य-सदन में, रहता जिनका डेरा,
मैं उन चरणों का चेरा, हो वन्दन उनको मेरा।। टेक।।

अन्तर-बाहर द्वादश तप से, जो कर्म-कालिमा दहते,
उपसर्ग परीषह-कृत बाधा जो, साम्य-भाव से सहते।
जो शुद्ध-अतीन्द्रिय आनन्द रस का, लेते स्वाद घनेरा।।1।।
जो दर्शन ज्ञान चारित्र वीर्य तप, आचारों के धारी,
जो मन-वच-तन का आलम्बन तज, निज चैतन्य विहारी।
शाश्वत सुख दर्शन ज्ञान चरित में, करते सदा बसेरा।।2।।
नित समता स्तुति वन्दन अरु, स्वाध्याय सदा जो करते,
प्रतिक्रमण और प्रति आख्यान कर, सब पापों को हरते।
चैतन्यराज की अनुपम निधियाँ, जिनमें करें बसेरा।।3।।

(17) निर्ग्रन्थों का मार्ग ...

निर्ग्रन्थों का मार्ग, हमको प्राणों से भी प्यारा है......
दिगम्बर वेश न्यारा है...... निर्ग्रन्थों का मार्ग।। टेक।।

शुद्धात्मा में ही, जब लीन होने को, मन किसी का मचलता है
तीन कषायों का, तब राग परिणति से, सहज ही टलता है।
वस्त्र का धागा.... वस्त्र का धागा, नहीं फिर उनने तन पर धारा है
दिगम्बर वेश न्यारा है................ निर्ग्रन्थों का मार्ग।।1।।

पंच इन्द्रिय का, विस्तार नहीं जिसमें, वह देह ही परिग्रह है;
तन में नहीं तन्मय, है दृष्टि में चिन्मय, शुद्धात्मा ही गृह है।
पर्यायों से पार... पर्यायों से पार, त्रिकाली ध्रुव का सदा सहारा है;
दिगम्बर वेश न्यारा है............... निर्ग्रन्थों का मार्ग।।2।।

मूलगुण पालन, जिनका सहज जीवन, निरन्तर स्वसंवेदन;
एक ध्रुव सामान्य, में ही सदा रमते, रत्नत्रय आभूषण।
निर्विकल्प अनुभव.. निर्विकल्प अनुभव से ही जिनने निज को शृंगारा है
दिगम्बर वेश न्यारा है............... निर्ग्रन्थों का मार्ग।।3।।

आनन्द के झरने, झरते प्रदेशों में निज ध्यान जब धरते हैं;
मोह रिपु क्षण में, तब भस्म हो जाता, श्रेणी जब चढ़ते हैं;
अन्तर्मुहूरत में... अन्तर्मुहूरत में ही, जिनने अनन्त चतुष्टय धारा है;
दिगम्बर वेश न्यारा है.......... निर्ग्रन्थों का मार्ग।।4।।

(18) धन्य-धन्य हे गौतम गुरु! ...

धन्य-धन्य हे गौतम गुरु! पुरुषार्थ तुम्हारा।
निश्चय भक्ति करी प्रभु की भव का लिया किनारा।।टेक।।

शिष्य पाँच सौ पाये, इस गौरव में भरमाये;
जिन शासन के तीव्र विरोधी, मोह महातम छाये।
कहाँ छिपी थी महायोग्यता जिसने किया उजारा।।1।।

काललब्धि जब आई, इन्द्र निमित्त बन आया;
जिनशासन के सारभूत इक, मंगल छंद सुनाया।
मंगलमय भवितव्य दिशा में तुमने चरण बढ़ाया।।2।।

वीरप्रभु के समवसरण का, मानस्तंभ निहारा;
मिथ्या मद गल गया तुम्हारा, वेश दिगम्बर धारा।
योग्य शिष्य थे वीर प्रभु के झेली जिन-श्रुतधारा।।3।।

अनेकान्तमय वस्तु बताई, स्याद्वाद के द्वारा;
वीरप्रभुजी मुक्ति पधारे, तुमने 'केवल' धारा।
धन्य-धन्य निर्वाण महोत्सव जग में हुआ उजारा।।4।।

(19) साधु-चरण-वन्दना

जिनकी निर्मल परिणति में नित सिद्धों का ध्रुवधाम है।
शाश्वत शिवपद साधक साधु-चरण में नम्र प्रणाम है।।1।।
सर्वप्रथम मिथ्यात्व सुभट पर करते वज्र प्रहार हैं।
अन्तर्बाह्य परिग्रह का नहिं कोई शरणागार है।।
अन्तर में शुद्धोपयोग से स्वानुभूति रसपान है।
शाश्वत शिवपद साधक साधु-चरण में नम्र प्रणाम है।।2।।
पंचेन्द्रिय विस्तार रहित बस देह मात्र ही संग है।
संयोगों के सहज परिणमन के प्रति भी निःसंग है।।
बाह्य क्रिया भी योग्य वर्तती सहज वर्तता ज्ञान है।
शाश्वत शिवपद साधक साधु-चरण में नम्र प्रणाम है।।3।।
उदासीन निश्चल वृत्ति संग होता शुभ उपयोग है।
सहज वर्तते सभी मूलगुण सहज चिदानन्द भोग है।।
हिंसादिक पापों का किंचित् भी नहिं नाम-निशान है।
शाश्वत शिवपद साधक साधु-चरण में नम्र प्रणाम है।।4।।
परम दिगम्बर समता रसमय मुद्रा जिनवत् सोहती।
भ्रमतम नाशक वचन किरण भी भविजन का मन मोहती।।
व्रत तप परिषह सहज वर्तते सहज अध्यन-ध्यान है।
शाश्वत शिवपद साधक साधु-चरण में नम्र प्रणाम है।।5।।
दृष्टि ज्ञान-वृत्ति का आश्रय केवल ज्ञायक भाव ही।
चलते-फिरते सिद्ध गुरु की शिवपद की नहिं चाह भी।।
गुरु पद-पंकज भ्रमर चित्त का चरणों में विश्राम है।
शाश्वत शिवपद साधक साधु-चरण में नम्र प्रणाम है।।6।।

।। पंचकल्याणक सम्बन्धी गीत ।।

(20) ये महामहोत्सव पंच-कल्याणक ...

(तर्ज - मेरे देश की धरती...)

ये महा-महोत्सव पंच-कल्याणक आया मंगलकारी...
ये महा-महोत्सव।। टेक।।

जब काललब्धिवश कोई जीव निज दर्शन शुद्धि रचाते हैं;
उसके संग में शुभभावों की धारा उत्कृष्ट बहाते हैं।
उन भावों के द्वारा तीर्थंकर कर्म प्रकृति रज आते हैं;
उनके पकने पर भव्य जीव वे तीर्थंकर बन जाते हैं।।1।।

इस भूतल पर पन्द्रह महीने धनराज रतन बरसाते हैं;
सुरपति की आज्ञा से नगरी दुल्हन की तरह सजाते हैं।
खुशियाँ छाई हैं दश दिश में यूँ लगे कहीं शहनाई बजे;
हर आतम में परमातम की भक्ति के स्वर हैं आज सजे।।2।।

माता ने अजब निराले अद्भुत देखें हैं सोलह सपने;
यह सुना तभी रोमांच हुआ तीर्थंकर होंगे सुत अपने।
अवतार हुआ तीर्थंकर का क्या मुक्ति गर्भ में आई है;
क्षय होगा भ्रमण चतुर्गति का मंगल संदेशा लाई है।।3।।

जब जन्म हुआ तीर्थंकर का सुरपति ऐरावत लाते हैं;
दर्शन से तृप्त नहीं होते, तब नेत्र हजार बनाते हैं।
जा पाण्डुशिला क्षीरोदधि जल से बालक को नहलाते हैं;
सुत माता-पिता को सौंप इन्द्र, तब ताण्डव नृत्य रचाते हैं।।4।।

वैराग्य समय जब आता है, प्रभु बारह भावना भाते हैं;
तब ब्रह्मलोक से लौकान्तिक आ, धन्य-धन्य यश गाते हैं।
विषयों का रस फीका पड़ता चेतन-रस में ललचाते हैं;
तब भेष दिगम्बर धार प्रभु संयम में चित्त लगाते हैं।।5।।

नवधा भक्ति से पड़गाहें, हे मुनिवर यहाँ पधारो तुम;
हे गुरुवर! अत्र-अत्र तिष्ठो, निर्दोष अशन कर धारो तुम।
है मन-वच-तन आहार शुद्ध अति भाव विशुद्ध हमारे हैं;
जन्मान्तर का यह पुण्य फला, श्री मुनिवर आज पधारे हैं।।6।।

सब दोष और अन्तराय रहित, गुरुवर ने जब आहार किया;
देवों ने पंचाश्चर्य किये, मुनिवर का जय-जयकार किया।
हैं धन्य-धन्य शुभ घड़ी आज, आँगन में सुरतरु आया है;
अब चिदानन्द रसपान हेतु, मुनिवर ने चरण बढ़ाया है।।7।।

प्रभु लीन हुए शुद्धातम में निज ध्यान अग्नि प्रगटाते हैं;
क्षायिक श्रेणी आरूढ़ हुए, तब घाति चतुष्क नशाते हैं।
प्रगटाते दर्शन-ज्ञान वीर्य-सुख लोकालोक लखाते हैं;
ॐकारमयी दिव्यध्वनि से प्रभु मुक्ति-मार्ग बतलाते हैं।।8।।

प्रभु तीजे शुक्लध्यान में चढ़ योगों पर रोक लगाते हैं;
चौथे पाये में चढ़ प्रभुवर गुणस्थान चौदवाँ पाते हैं।
अगले ही क्षण अशरीरी होकर सिद्धालय में जाते हैं;
थिर रहे अनन्तानन्त काल कृतकृत्य दशा पा जाते हैं।।9।।

है धन्य-धन्य वे कहान गुरु जिनवर महिमा बतलाते हैं;
वे रंग राग से भिन्न चिदातम का संगीत सुनाते हैं।
हे भव्यजीव! आओ सब जन, अब मोहभाव का त्याग करो;
यह पंचकल्याणक उत्सव कर, अब आतम का कल्याण करो।।10।।

(21) आया पंचकल्याणक महान ...

श्री नेमि बनेंगे भगवान.. आनन्द रस झरता है।। टेक।।
स्वर्गपुरी से प्रभु जब आयेंगे, सुरपति गर्भकल्याण मनायेंगे।
नाचे गायें... नाचे गायें करे गुणगान, श्री नेमि बनेंगे भगवान।।1।।
नेमिकुँवर का जन्म जब होयगा, पाण्डुशिला पर अभिषेक होयगा।
प्रभु धारेंगे.. प्रभु धारेंगे तीन-तीन ज्ञान, श्री नेमि बनेंगे भगवान।।2।।

जीवन की क्षणभंगुरता जानकर, एक शुद्ध आतम उपादेय मानकर।
फिर धारेंगे... फिर धारेंगे मुनि पद महान, श्री नेमि बनेंगे भगवान।।3।।
क्षायिक श्रेणी प्रभुजी चढ़ेंगे क्षण में केवलज्ञान वरेंगे।
दिव्यध्वनि... दिव्यध्वनि खिरेगी महान, श्री नेमि बनेंगे भगवान।।4।।
प्रभु जब योग निरोध करेंगे, मुक्तिपुरी का राज वरेंगे।
तब होगा...तब होगा आनन्द महान, श्री नेमि बनेंगे भगवान।।5।।

(22) स्वागत करते आज तुम्हारा...

स्वागत करते आज तुम्हारा....
आओ आओ हे प्रिय मेहमान, मंगल स्वागत है।।टेक।।
स्वागत करते हैं जिनवर का, परमपूज्य तीर्थंकर प्रभु का।
स्वागत है निर्मल परिणति में, मंगलमय चेतन ज्ञायक का।।
प्रभु के चरणों में वंदन कर, श्रद्धा सुमनों को अर्पण कर।
तुम धन्य बनो मेहमान! मंगल स्वागत है।।1।।

सारा भूमण्डल रोमांचित, कण-कण में छाई हरियाली।
तीर्थंकर के शुभागमन से, भरतक्षेत्र की छटा निराली।।
हम तुम सब स्वागत करते हैं, चरणों में वंदन करते हैं।
तुम भले पधारे मेहमान मंगल स्वागत है।।2।।

पंच प्रभु में भक्ति तुम्हारी, निश-दिन हो भावना हमारी।
प्रभु के पंचकल्याण महोत्सव की कर ली हमने तैयारी।।
शुद्धातम को लक्ष्य बनायें, रत्नत्रय निधियाँ प्रगटायें।।
जन-जन का हो कल्याण, मंगल स्वागत है।।3।।

(23) शासन ध्वज लहराओ ...

शासन ध्वज लहराओ म्हारा साथी,
पंच कल्याण रचाओ म्हारा साथी।

आओ रे आओ आओ म्हारा साथी,
जीवन सफल बनाओ म्हारा साथी।।टेक।।

स्वर्गपुरी से सुरपति आये, अनेकान्तमय ध्वज ले आये।
स्याद्वाद के रंग में रंग कर, सबका संशय तिमिर मिटाये।
परिणति में लहराओ म्हारा साथी।।1।।

मंगल स्वस्तिक चिह्न बनाओ, चार गति का दुःख नशाओ।
शुद्धातम को लक्ष्य बनाकर, भेदज्ञान की ज्योति जलाओ।
मोक्ष-महल में आओ म्हारा साथी।।2।।

गुण अनन्तमय निर्मल आतम, अनेकान्त कहते परमातम।
धर्म-युगल जो रहे विरोधी, उनसे भी शोभित शुद्धातम।
निज स्वरूप रस पाओ म्हारा साथी।।3।।

मंगल स्वर्ण-कलश ले आओ, इस पर स्वस्तिक चिह्न बनाओ।
माता के कर-कमलों द्वारा, मंगल वेदी पर पधराओ।
मंगल कलश सजाओ म्हारा साथी।।4।।

(24) मंगलमय मंगलकारी ...

(तर्ज - जन-गण-मन...)

मंगलमय मंगलकारी जिन! शासनध्वज लहराता।
अनेकांतमय वस्तु-व्यवस्था का यह बोध कराता।।
स्याद्वाद शैली से जग का संशय-तिमिर मिटाता।
चहुँगति दुःख नशाता जन-गण-मन हर्षाता।
जिनशासन सुखदाता।।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरणमय मुक्तिमार्ग दर्शाता।
जय हे...जय हे...जय हे...जय जय जय जय हे।।

(25) इन्द्र-प्रतिष्ठा कराओ मोरे भैया ...

इन्द्र प्रतिष्ठा कराओ मोरे भैया, इन्द्र प्रतिष्ठा कराओ।
साधर्मी मिल आओ मोरे भैया, इन्द्र प्रतिष्ठा कराओ।।टेक।।

सुन्दर जिनमन्दिर बनवाया, उसमें जिनप्रतिमा पधराना।
श्री जिनवर के पंचकल्याणक, इन्द्र-इन्द्राणी बनके रचाना।।
सब मिल खुशियाँ मनाओ मोरे भैया इन्द्र प्रतिष्ठा कराओ।।1।।

दैवी वस्त्राभूषण धारो, तन-चेतन को भिन्न निहारो।
परिणामों को शुद्ध बनाकर, श्री जिन भक्ति उर में धारो।।
रक्षा सूत्र बँधाओ मोरे भैया इन्द्र प्रतिष्ठा कराओ।।2।।

मोती की माला उर धारो, गुण अनन्तमय आत्म निहारो।
कानों में कुण्डल धारण कर, जिनवचनामृत पी सुख पाओ।।
शीश पे मुकुट बँधाओ मोरे भैया इन्द्र प्रतिष्ठा कराओ।।3।।

(26) गर्भकल्याणक आ गया ...

गर्भ-कल्याणक आ गया,
देखो देखो देखो जी आनन्द छा गया।। टेक।।

स्वर्गपुरी से देवगति को तजकर प्रभु ने नरगति पाई;
धन्य-धन्य हैं त्रिशला माता तीर्थंकर की माँ कहलाई;
कुण्डलपुर में आनन्द छा गया।।1।।

सोलह सपने माँ ने देखे मन में अचरज भारी है;
सिद्धारथ नृप से फल पूछा उपजा आनन्द भारी है;
तीन भुवन का नाथ आ गया।।2।।

अन्तिम गर्भ हुआ प्रभुजी का अब दूजी माता नहीं होगी;
शुद्धातम के अवलम्बन से आत्मसाधना पूरी होगी;
ज्ञान-स्वभाव हमें भा गया।।3।।

(27) सेवा गीत ...

(तर्ज – जल भरि भरि लाओ...)

साधर्मी बहनो! सब आओ, अपनी सखियों को बुलाओ।
आज माता को मिलके सजाना है.....हो.... आज ।।
कोई मंगल गीत सुनाओ, सिद्धों का संदेश सुनाओ।
आज माता का मन बहलाना है हो.... आज.... ।।टेक।।

कोई माता की साड़ी सँवारो जी सँवारो.....।
कोई माता को बिंदिया लगाओ...............।।
कोई माता को हार पहनाओ जी पहनाओ....।
चेतन–चंद्र उदर में आयो, तन–मन में अमृत बरसायो।
आज माता का मन बहलाना है हो.... आज.... ।।1।।

कोई माता को तिलक लगाओ जी लगाओ.......।
सुत त्रिभुवन तिलक है आयो जी.................।।
हो................. सब माता की भक्ति रचाओ।
निर्मल जल से चरण पखारो, निजपरिणति को शुद्ध बनाओ।
आज माता का मन बहलाना है हो... आज..... ।।2।।

कोई माता को कंगन पहनाओ जी पहनाओ.......।
शुद्ध आतम का दर्शन पाओ जी.... हो....।।
निज जीवन सफल बनाओ जी बनाओ।
अंतिम भवधारी सुत आयो, माताजी का मन हरषायो।
आज माता का मन बहलाना है हो... आज..... ।।3।।

कोई माता को दर्पण दिखाओ जी दिखाओ.....।
ज्ञेयाकारों में ज्ञान दिखाओ जी।
हो... निज आतम को लक्ष्य बनाओ जी... बनाओ।
दर्पण–सम निज ज्ञान लखाओ, पर–परिणति से चित्त हटाओ।।
आज माता का मन बहलाना है, हो... आज...।।4।।

(28) पंखिड़ा ओऽऽऽ पंखिड़ा ...

पंखिड़ा ओऽऽऽ पंखिड़ा..... 2
पंखिड़ा रे उड़ के आओ कुण्डलपुर में;
तीर्थंकर जन्मे आज भरतक्षेत्र में।। टेक।।

माता त्रिशला ने देखे थे सोलह सपने,
उनका फल बताया सिद्धार्थराज ने;
तेजवान बुद्धिमान लाल होयगा,
ज्ञानवान तीर्थंकर बाल होयगा।।2।।

सिद्धार्थराज के द्वार बाजती बधाई है,
प्रथम दर्शन को शची इन्द्राणी आई है;
इन्द्र-इन्द्राणी आये आज नगर में,
खुशियाँ अपार छाईं नगर-नगर में।।2।।

प्रभु आये यहाँ अच्युत विमान से,
यह बालक शोभित सम्यक्त्व ऋद्धि से;
मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान है,
सम्यग्दर्शन ज्ञान रत्न भी महान है।।3।।

प्रभु पूरी करेंगे यहाँ आत्मसाधना,
अब धारण करेंगे कभी पुनर्जन्म ना;
वीतरागभाव से जिनराज बनेंगे,
चिदानन्द चैतन्यराज वरेंगे।।4।।

(29) मेरा पलने में झूले ललना ...

मेरा पलने में झूले ललना... मेरा पलने में।। टेक।।
स्वर्णमयी अरु रत्न जड़ित यह स्वर्गपुरी से आया है;
इस पलने में बैठ झूलने सुरपति मन ललचाया है;
किन्तु पुण्य है नेमिकुँवर का... इसमें शोभे ललना।।1।।

बड़े प्यार से आज झुलाऊँ, अपने प्यारे लाल को;
सप्त स्वरों से गीत सुनाऊँ, तीर्थंकर सुत बाल को ;
शुद्ध बुद्ध आनन्द कन्द में... अनुभव करता ललना।।2।।

तन-मन झूमे पिताश्री का, अवसर है आनन्द का;
सोच रहे हैं पुत्र हमारा, रसिया आनन्दकन्द का;
ज्ञानानन्द झूले में झूले... देखो मेरा ललना।।3।।

देवों के संग क्रीड़ा करता, सब झूले आनन्द में;
किन्तु पुत्र की अन्तर-परिणति, झूले परमानन्द में;
गुणस्थान षष्टम-सप्तम में... कब झूलेगा ललना।।4।।

अन्तर के आनन्द में झूले, जाने ज्ञान स्वभाव को;
मुझसे भिन्न सदा रहते हैं, पुण्य-पाप के भाव तो;
भेदज्ञान की डोरी खीचें... देखो माँ का ललना।।5।।

ज्ञान मात्र का अनुभव करता, रमे नहीं परज्ञेय में;
दृष्टि सदा स्थिर रहती है, चिदानन्दमय ध्येय में;
निज अन्तर में केलि करता... देखो मेरा ललना।।6।।

(30) आनंद अवसर आज, सुरगन आए नगर में ...

आनंद अवसर आज सुरगण आए नगर में।
तीर्थंकर युवराज, आनंद छाया नगर में।।टेक।।

स्वर्गपुरी से सुरपति आये, सुंदर स्वर्ण कलश ले आये।
निर्मल जल से तीर्थंकर का, मंगलमय शुभ न्हवन कराये।।
परिणति शुद्ध बनाय भविजन।।1।।

प्रभुजी वस्त्राभूषण धारें, चेतन को निर्वस्त्र निहारें।
एक अखण्ड अभेद त्रिकाली चेतन तन से भिन्न निहारें।।
आनन्द रस बरसाय भविजन।।2।।

पुण्य उदय है आज हमारे नगरी में जिनराज पधारे।
निश-दिन प्रभु की सेवा करने भक्ति सहित सुरराज पधारे।।
जीवन सफल बनाय सुरगण।।3।।

सुरपति स्वर्गपुरी को जावें भोगों में नहिं चित ललचावें।
आनन्दघन निज शुद्धातम का रस ही परिणति में नित भावे।।
भेद-विज्ञान सुहाय भविजन।।4।।

(31) रोम-रोम में नेमिकुँवर ...

(तर्ज रोम रोम से निकले प्रभुवर ...)

रोम-रोम में नेमिकुँवर के उपशम रस की धारा;
हाँ, उपशम रस की धारा ....
राग-द्वेष के बन्धन तोड़े, वेश दिगम्बर धारा।।टेक।।

ब्याह करन को आये, संग बराती लाये;
पशुओं को बन्धन में देखा, दया सिन्धु लहराये।
धिक्-धिक् जग की स्वारथ वृत्ति, कहीं न सुक्ख लगारा।।1।।

राजुल अति अकुलाये, नौ भव की याद दिलाये;
नेमि कहें जग में न किसी का, कोइ कभी हो पाये।
रागरूप अंगारों द्वारा, जलता है जग सारा।।2।।

नौ भव का सुमिरण कर नेमी, आतम तत्त्व विचारें;
शाश्वत् ध्रुव चैतन्यराज की, महिमा चित्त में धारें।
लहराता वैराग्य सिन्धु अब भायें भावना बारह।।3।।

राजुल के प्रति राग तजा है, मुक्ति-वधु को ब्याहें;
नग्न दिगम्बर दीक्षा धर कर, आतमध्यान लगाये।
भव-बन्धन का नाश करेंगे, पावें सुख अपारा।।4।।

(32) गिरनारी पर तपकल्याणक ...

गिरनारी पर तप कल्याणक, नेमि बनेंगे मुनिराज रे।।टेक।।
प्रभुजी बारह भावना भायें, परिणति में वैराग्य बढ़ायें,
हम भी बनेंगे मुनिराज रे।।1।।
शुद्धातम रस को ही चाहे विषय भोग विष-सम ही लागें,
राग लगे अंगार रे।।2।।
प्रभुजी वेश दिगम्बर धारें, चेतन की निर्ग्रन्थ निहारें,
बरसे आनन्द धार रे।।3।।

(33) आनन्द अवसर आयो ...

आनन्द अवसर आयो, मुनिवर दर्शन पायो,
परम दिगम्बर सन्त पधारे, जीवन धन्य बनायो-बनायो।।टेक।।
पुण्य उदय है आज हमारे, नेमीश्वर मुनिराज पधारे;
श्री मुनिवर के दर्शन करके, शुद्ध हुए हैं भाव हमारे।
जीवन सफल बनायो... बनायो।।1।।
वरदत्त राजा हर्षित भारी, आहार दान की है तैयारी;
निराहार चेतन राजा के, अनुभव से है आनन्द भारी।
मुनिवर को पड़गाह्यो... पड़गाह्यो।।2।।
हे स्वामी तुम यहाँ विराजो, उच्चासन पर आप विराजो;
मन-वच-तन आहार शुद्ध है, भाव हमारे अति विशुद्ध हैं।
अपने चरण बढ़ाओ... बढ़ाओ।।3।।
दोष छियालिस मुनिवर टालें, अन्तराय बत्तीसों टालें;
दोषरहित निज के अनुभव से, चतुर्गति का भ्रमण निवारें।
तप को निमित्त बनायो... बनायो।।4।।

मुनिवर अब आहार करेंगे, निज चैतन्य विहार करेंगे;
क्षायिक श्रेणी आरोहण कर, मुक्तिपुरी का राज वरेंगे।
निज में निज को रमायो...रमायो।।5।।

(34) प्रभो! आपकी अनुपम परिणति ...

प्रभो! आपकी अनुपम परिणति, दीक्षा का जो किया विचार।
जगत जनों को भी मंगलमय, नमन करें हम बारम्बार।।
भव-भोगों को नश्वर जाना, शुद्धातम जाना सुखकार।
मोह-शत्रु का नाश करेंगे, प्रगटेगा सुख अपरम्पार।।1।।

पहले से ही प्रभुवर तुमने, मिथ्यातम का किया विनाश।
हे दीक्षा-ग्राहक! वैरागी, चरितमोह को करो परास्त।।
रत्नत्रय आभूषण धारे, जंगल में यह मंगल कार्य।
रागी जन को है अति दुष्कर किन्तु आपको है स्वीकार ।।2।।

धन्य धन्य हे मुक्ति-पथिक ! तुम सहज सौम्य मुद्राधारी।
लक्ष्योन्मुख है ज्ञान आपका, चारित पथ का अनुगामी।।
परिषहजय करके दिग्विजयी, सुख वांछक हो हे जगदीश।
इन्द्रिय अरु प्राणी संयम, धारण करके हो त्रिभुवन ईश।।3।।

शुक्ल ध्यान में कर्मेन्धन को, नष्ट करोगे केवलज्ञान।।
जग को मुक्तिमार्ग बताओ, हे त्रिभुवन के गुरु महान।।4।।

(35) जन-जन को अचरज आयो ...

जन-जन को अचरज आयो, नेमी ने रथ मुड़वायो;
नेमिकुँवर के परिणामों में, उपशम रस उमड़ायो उमड़ायो।।टेक।।
नेमिकुँवर दूल्हा बन आये, छप्पन कोटि बराती लाये;
ब्याह को रंग उमड़ायो...... उमड़ायो। जन-जन.....।।1।।

पशुओं के क्रन्दन को सुनकर, जग की स्वारथ वृत्ति देखकर;
ब्याह का राग नशायो...... नशायो। जन-जन......।।2।।

समुद्रविजय अचरज में भारी, पुत्र विवाह की है तैयारी;
रंग में भंग कैसे आयो...... जी आयो। जन-जन......।।3।।

राजुल को बाबुल समझाये, बेटी दूजा वर बुलवावें;
राजुल को नेमी मन भायो...... भायो। जन-जन......।।4।।

शोक बहुत राजुल के मन में, किन्तु लगाया चित संयम में;
दीक्षा में चित्त रमायो...... रमायो। जन-जन......।।5।।

(36) अब विषयों में नाहीं रमेंगे ...

अब विषयों में नाहिं रमेंगे, चिदानन्द पान करेंगे;
चहुँ गतियों में नाहिं भ्रमेंगे, निजानन्द धाम रहेंगे।।टेक।।

मैं नहिं तन का, तन नहिं मेरा, चेतनभाव में मेरा बसेरा;
अब भेद-विज्ञान करेंगे, निजानन्द धाम रहेंगे।।1।।

विषयों का रस विष का प्याला, चेतन का आनन्द निराला;
अब ज्ञान में ज्ञान लखेंगे, निजानन्द पान करेंगे।।2।।

ज्ञान में है ज्ञायक प्रभु मेरा, ज्ञायकभाव में मेरा बसेरा;
अब क्षायिक श्रेणी चढ़ेंगे, निजानन्द पान करेंगे।।3।।

(37) विषयों की तृष्णा को ...

विषयों की तृष्णा को छोड़, संयम की साधना में,
चल पड़े वीरकुमार।।
परिग्रह की चिन्ता को छोड़ के निज के चिन्तन में,
रम रहे वीरकुमार।। टेक।।

यह जीव अनादि से, है मोह से हारा,
चहुँगति में भटक रहा, दुख सहता बेचारा;
कोई नहीं है शरण अतः, आतम की शरणा में,
जाना जगत असार, चल पड़े वीरकुमार।।1।।
प्रभु चल पड़े वन को, ध्यायें निज चेतन को,
सब राग तन्तु तोड़े, काटें भव बन्धन को;
फिर मोह शत्रु नाशें और क्षायिक चारित धारें,
जिसमें है आनन्द अपार, चल पड़े वीरकुमार।।2।।
कर चार घातिया क्षय, प्रगटे चतुष्ट अक्षय,
सारी सृष्टि झलके, परिणति निज में तन्मय;
शाश्वत शिवपद पायें और अब मुक्तिवधू ब्याहें,
हो भव-सागर पार, चल पड़े वीरकुमार।।3।।

(38) देवों और मानवों में ...

देवों और मानवों में चर्चा ये चल पड़ी,
कौन पालकी का हकदार रे! कौन पालकी का हकदार रे।। टेक।।
दिव्य शक्ति के धारी हम हैं, पालकी लेकर आये हम हैं;
सदा निरोगी यौवनमय तन, गगन-विहारी यह वैक्रिय तन।
पहले हाथ लगायेंगे, पालकी के हम हकदार रे।।1।।

यह तन तो जड़ पुद्गल का है, इसमें भी क्षण-भंगुरता है;
दिव्य-शक्तियाँ भी पुद्गल, की इनमें शक्ति नहीं आतम की।
करो न अब तकरार रे... पालकी के हम हकदार रे।।2।।

वस्त्राभूषण हम ले आये, पन्द्रह मास रतन बरसाये;
पंच कल्याणक महामहोत्सव, भूतल पर आ हमीं मनाये।
न्याय से करो विचार रे, पालकी के हम हकदार रे।।3।।

जड़ रत्नों की क्या है महिमा, यह तो तीर्थंकर की गरिमा;
पुण्य उदय से ही तुम आओ, क्यों न अन्य का उत्सव मनायो।
मन में करो विचार रे, पालकी के हम हकदार रे।।4।।

समवशरण भी हम ही बनायें, दिव्यध्वनि का योग बनायें;
मोक्षकल्याणक में भी आयें, पहले पालकी क्यों न उठायें।
क्यों नहीं करो विचार रे, पालकी के हम हकदार रे।।5।।

भव्यजीव के पुण्य उदय से, तीर्थंकर का वचन योग है;
क्या तीर्थंकर सम हो सकते, क्या संयम धारण कर सकते।
अत: नहीं हकदार रे... पालकी के हम हकदार रे।।6।।

धन्य-धन्य यह मानव जीवन, संयम धारण कर सकते नर;
हे मानव सुर वैभव ले लो, क्षणभर को मानव तन दे दो।
तुम सच्चे हकदार हो... पालकी के तुम हकदार हो।।7।।

(39) घर-घर आनन्द छायो ...

घर-घर आनन्द छायो मुनिवर ने केवल पायो।। टेक।।
शुक्लध्यान का दूजा पाया, प्रभु ने आतमध्यान लगाया;
पहले चारित्रमोह विनाशा, सम्यक्चारित्र रत्न को पाया।
चहुँगति दु:ख नशायो नशायो।।1।।

मात्र एक अन्तर्मुहूर्त में, ज्ञान-दर्शनावरण नशाया;
तत्क्षण ही निज आत्मवीर्य से, अन्तराय घातिया नशाया।
अनन्त चतुष्टय पायो जी पायो।।2।।

शुक्लध्यान का तीजा पाया, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति सुहाया;
प्रभु ने अद्भुत ध्यान लगाया, काय योग अतिसूक्ष्म रहाया।
आतम रस बरसायो-बरसायो।।3।।

शुक्लध्यान का चौथा पाया, व्युपरतिक्रियानिवृत्ति सुहाया;
प्रभु ने योग निरोध कराया, मन-वच-काय सम्बन्ध नशाया।
शाश्वत सिद्ध पद पायो जी पायो।।4।।
पुण्य उदय है आज हमारे, नेमीश्वर गिरनार पधारे;
आत्मसाधना पूरी करके, प्रभु शाश्वत शिवधाम पधारे।
सुरपति ने उत्सव मनायो मनायो।।5।।

(40) कल्पद्रुम स्तवन

(वीरछन्द)

कल्पद्रुम यह समवसरण है भव्य जीव का शरणागार।
जिनमुख-घन से सदा बरसती चिदानन्दमय अमृतधार।।
जहाँ धर्म-वर्षा होती वह समवसरण अनुपम छविमान।
कल्पवृक्ष-सम भव्य जनों को देता गुण अनन्त की खान।।
सुरपति की आज्ञा से धनपति रचना करते हैं सुखकार।
निज की कृति ही भासित होती अति आश्चर्यमयी मनहार।।1।।

निज-ज्ञायकस्वभाव में जमकर प्रभु ने जब ध्याया निज-ध्यान।।
मोह-भाव क्षय कर प्रकटाया यथाख्यात-चारित्र महान।।
तब अन्तर्मुहूर्त में प्रकटा केवलज्ञान महा-सुखकार।
दर्पण में प्रतिबिम्ब तुल्य जो लोकालोक प्रकाशनहार।।2।।

गुण अनन्तमय कला प्रकाशित चेतन-चन्द्र अपूर्व महान।
राग-आग की दाह रहित शीतल झरना झरता अभिराम।।
निज-वैभव में तन्मय होकर भोगें प्रभु आनन्द अपार।
ज्ञेय झलकते सभी ज्ञान में किन्तु न ज्ञेयों का आधार।।3।।

दर्शन-ज्ञान-वीर्य-सुख से है सदा सुशोभित चेतनराज।
चौंतिस अतिशय आठ प्रातिहार्यों से शोभित हैं जिनराज।।

अन्तर्बाह्य प्रभुत्व निरख कर भव्य लहें आनन्द अपार।
प्रभु के चरण-कमल में वन्दन कर पाएँ सुख-शान्ति अपार।।4।।

(41) दिव्यध्वनि वीरा ...

दिव्यध्वनि वीरा खिराई आज शुभ दिन,
धन्य-धन्य सावन की पहली है एकम्।।टेक।।

आतम स्वभावं परभाव भिन्नम्
आपूर्णमाद्यन्त-विमुक्तमेकम्।।

मेरे प्रभु विपुलाचल पर आये, वैशाख दशमी को घातिया खिपाये;
क्षण में लोकालोक लखाये, किन्तु न प्रभु उपदेश सुनाये।
वाणी की काललब्धि आई नहीं उस दिन;
धन्य-धन्य सावन की पहली है एकम्।।1।।

इंद्र अवधिज्ञान उपयोग लगाये, समवसरण में गणधर न पाये;
इन्द्रभूति गौतम में योग्यता लखाये, वीर प्रभु के दर्शन को आये।
काललब्धि लेकर के आई आज गौतम;
धन्य-धन्य सावन की पहली है एकम्।।2।।

मेरे प्रभु ॐकार ध्वनि को खिराये, गौतम द्वादश अंग रचाये;
उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सत् समझाये, तन चेतन भिन्न-भिन्न बताये।
भेद-विज्ञान सुहायो आज शुभ दिन;
धन्य-धन्य सावन की पहली है एकम्।।3।।

य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं, स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यम्;
विकल्प-जाल-च्युत-शान्तचित्तास्त एव साक्षादमृतं पिबन्ति।
स्वानुभूति की कला सिखाई आज शुभ दिन;
धन्य-धन्य सावन की पहली है एकम्।।4।।

(42) शिखर पे कलश ...

शिखर पे कलश चढ़ाओ म्हारा साथी।
मोक्ष-महल में आओ म्हारा साथी।।टेक।।

शुद्धातम को लक्ष्य बनाकर,
आतम में अपनापन लाकर।
समकित नींव भराओ म्हारा साथी।।1।।

नय-प्रमाण दीवार बनाओ,
अनेकान्त का रंग चढ़ाओ।
चारित्र छत डलवाओ मेरे साथी।।2।।

रत्नत्रय का शिखर बनाओ,
केवलज्ञान का कलश चढ़ाओ।
मोक्षमहल में आओ म्हारा साथी।।3।।

।। विविध आध्यात्मिक गीत ।।

(43) चैतन्य वन्दना

जिन्हें मोह भी जीत न पाये, वे परिणति को पावन करते।
प्रिय के प्रिय भी प्रिय होते हैं, हम उनका अभिनन्दन करते।।
जिस मंगल अभिराम भवन में, शाश्वत सुख का अनुभव होता।
वन्दन उस चैतन्यराज को, जो भव-भव के दुख हर लेता।।1।।

जिसके अनुशासन में रहकर, परिणति अपने प्रिय को वरती।
जिसे समर्पित होकर शाश्वत ध्रुव सत्ता का अनुभव करती।।
जिसकी दिव्यज्योति में चिरसंचित अज्ञानतिमिर धुल जाता।
वन्दन उस चैतन्यराज को, जो भव-भव के दुख हर लेता।।2।।

जिस चैतन्य महा हिमगिरि से परिणति के घन टकराते हैं।
शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द रस की, मूसलधारा बरसाते हैं।।
जो अपने आश्रित परिणति को, रत्नत्रय की निधियाँ देता।
वन्दन उस चैतन्यराज को, जो भव-भव के दुख हर लेता।।3।।

जिसका चिन्तनमात्र असंख्य प्रदेशों को रोमांचित करता।
मोह उदयवश जड़वत् परिणति में अद्भुत चेतन रस भरता।।
जिसकी ध्यान अग्नि में चिर संचित कर्मों का कल्मष जलता।
वन्दन उस चैतन्यराज को, जो भव-भव के दुख हर लेता।।4।।

(44) निज स्वरूप को जानो

निज स्वरूप को जानो तो मिट जाये संसार।
वस्तुस्वरूप का निर्णय करना, सब शास्त्रों का सार।। टेक ।।

आतम-भान बिन, भक्ति दया जप,
पूजा के भाव तेरे, व्यर्थ गये सब।
पुण्य औ' धर्म का भेद जाने तो हो उपकार,
वस्तुस्वरूप का निर्णय करना, सब शास्त्रों का सार।।1।।

देह कर्म रागादि विभाव तो,
चेतन से भिन्न यह ध्यान लाओ तो।
मैं तो हूँ ज्ञानस्वभावी, नाहीं पर का करतार,
वस्तुस्वरूप का निर्णय करना, सब शास्त्रों का सार।।2।।

कर्तार बुद्धि से अशांत बना है,
शांत स्वरूप तेरा गुरु ने कहा है।
गुरु-वचनों में श्रद्धा हो तो भव से बेड़ा पार।
वस्तुस्वरूप का निर्णय करना, सब शास्त्रों का सार।।3।।

(45) भगवान आत्मा आनंद घन है....

(तर्ज : कैसी सुन्दर जिनप्रतिमा...)

भगवान आत्मा आनंद घन है चेतन उस पर दृष्टि कर,
शांत स्वरूप को लक्ष में ले, हो जाएँगे सब संकट हर।।टेक।।

कर्म तुझमें नहीं राग तुझमें नहीं, ऐसा जिनवर ने बतलाया,
तेरे दोषों से ही बंधन हैं, यह पूज्य गुरु ने फरमाया-2।
अपने दोषों को दूर करें तो, जाएँ शाश्वत सुख के घर।।
शांत स्वरूप.................।।1।।

तू वस्तु स्वरूप को भूला था, पर भावों में भरमाया था,
चेतन तो पर का ज्ञाता है, यह ज्ञान स्वभाव न जाना था-2।
पर का अकर्ता यद्यपि ज्ञाता, ऐसी सम्यक् श्रद्धा कर।।
शांत स्वरूप.................।।2।।

यदि कर्म विकार करायें तुझे, तो कर्माधीन तू हो जावे,
ऐसी स्थिति में सुन चेतन, तुझे शाश्वत सुख न मिल पाये-2।
तू चेतन कर्माधीन नहीं यह, पूज्य गुरु की कड़ी मोहर।
शांत स्वरूप.................।।3।।

(46) आओ तुम्हें ध्रुवधाम दिखा दूँ...

आओ तुम्हें ध्रुवधाम दिखा दूँ... दिखला दो ना।
चिदानंद रस पान करा दूँ... करवा दो ना।।

अंतर के चैतन्य गगन में, शाश्वत सुख की खान दिखा दूँ।
दिखला दो ना।।टेक।।

छोड़ो पाप कर्म को अब तुम, पुण्य कर्म अपनाओ।
हिंसा आदि पाप छोड़, व्रत संयम में चित लाओ।।
ध्रुव में नहिं आते ऐसे, आते हैं फिर वो कैसे।
ठहरो तुमको समझा दूँ.... समझा दो ना।।1।।

पुण्य-पाप दोनों बंधन के कारण, जिनवर कहते।
शुभ से स्वर्ग भले होता पर भव-बंधन नहिं कटते।
धर्म नहीं होता शुभ से, होता है फिर वो कैसे?
ठहरो तुमको समझा दूँ.... समझा दो ना।।2।।

जो शुभ से बंधन होता तो, ज्ञानी क्यों शुभ करते।
व्रत संयम गुप्ति चारित षट् आवश्यक आचरते।।
शुभ में नहिं कोई पाप है, मिटता भव-संताप है।
देखो जिन क्या समझाते? समझा दो ना।।3।।

अशुभ भाव से बचने हेतु ज्ञानी को शुभ आता।
पर उसमें तन्मय नहीं होते रहते उसके ज्ञाता ।।
दृष्टि तो ध्रुव में धरते, राग रहित ध्रुव में रहते।
श्री जिन ऐसा समझाते.... समझा दो ना।।4।।

(47) जो अपना नहिं उसके अपनेपन में

जो अपना नहिं उसके अपनेपन में जीवन चला गया।
पर में अपनापन करके हा! मैं अपने से छला गया।।टेक।।

जग में ऐसा हुआ कौन जो अपने से हारा?
जिसकी परिणति को अनादि से मोह-शत्रु ने मारा।।
जिसने जिसको अपना माना उसे छोड़ वह चला गया।
पर में अपनापन करके हा! मैं अपने से छला गया।।1।।

अपने को विस्मृत करके हा! पर को अपना माना।
क्या वह अपना हुआ कभी, यह सत्य अरे! न जाना।।
जो अनादि से अपना था, वह विस्मृति में ही चला गया।
पर में अपनापन करके हा! मैं अपने से छला गया।।2।।

परभावों के प्रबल वेग में निश-दिन बहता रहता।
ज्ञान-पटल पर कर्म-उदय निज गाथा कैसे लिखता?।।
प्रगट ज्ञान का अंश अरे! पर-परिणति में क्यों चला गया?
पर में अपनापन करके हा! मैं अपने से छला गया।।3।।

अपने में पर के शासन का अन्त कहो कब होगा?
पर में निज के अवभासन का अन्त कहो कब होगा?
पर-भावों के वेदन में ही सारा जीवन चला गया।
पर में अपनापन करके हा! मैं अपने से छला गया।।4।।

रंग राग से भिन्न भेद से भी जो भिन्न निराला।
उसमें तन्मय होकर पीओ निज अमृत का प्याला।।
प्रगट ज्ञान का अंश तभी निज ज्ञान-पुंज में चला गया।
अपने में अपनापन करके मैं अपने में चला गया।।5।।

(48) परिणति के स्वर

लो अर्पित चैतन्यराज तुममें मुखरित ये परिणति के स्वर।
तेरी ममता में रच-पच कर पी अनुपम रस जी भर-भर।।
तुझमें व्याप्त रहे यह परिणति, जब निज का अस्तित्व बिसरकर।
तेरी अस्ती की मस्ती को, भोगें नित तुझमें रच-पच कर।।

मैं उमा बन कर हिमालय पर धरूँगी ध्यान तेरा।
तुम बनो शंकर हमारे लो पचाओ गरल मेरा।।टेक।।

तुम सदा शिव शुद्ध चिद्घन, तुम्हें ध्याकर बनें अर्हन्।
तुम गुणों के धाम सुखमय, मैं तुम्हीं में रहूँ तन्मय।
व्याप्त तुममें हो जिऊँ, जब क्षीण होगा कलुष मेरा।।
तुम बनो शंकर हमारे लो पचाओ गरल मेरा।।1।।

मैं नहीं मैं, तुम नहीं तुम, तुम्हीं मैं हूँ, मैं बनी तुम।
द्वैत की मिट गई दूरी, मैं विलय हूँ मात्र हो तुम।।
व्यर्थ संबोधन सभी हों, लूँ तुम्हीं में जब बसेरा।
तुम बनो शंकर हमारे लो पचाओ गरल मेरा।।2।।

हो तुम्हारी झलक मुझमें, या तुम्हीं में मैं झलकती।
चेतना की धार बहकर, चिर कलुष प्रक्षाल करती।।
दृष्टि प्राची में उदित हो, आओ तो बनकर सबेरा।
तुम बनो शंकर हमारे लो पचाओ गरल मेरा।।3।।

ध्यानपथ में तुम्हें धरकर, ध्येय की धूनी रमाकर।
ध्यान ध्याता-ध्येय का भी, भेदमय कालुष मिटाकर।।
शून्य होकर भी रहेगा, अन्त बन अस्तित्व मेरा।
तुम बनो शंकर हमारे लो पचाओ गरल मेरा।।4।।

(49) तू जाग रे चेतन प्राणी...

(तर्ज - ऐ मेरे वतन के लोगों...)

तू जाग रे चेतन प्राणी कर आतम की अगवानी।
जो आतम को लखते हैं उनकी है अमर कहानी।।टेक।।

है ज्ञान मात्र निज ज्ञायक जिसमें हैं ज्ञेय झलकते।
यह झलकन भी ज्ञायक है, इसमें नहिं ज्ञेय महकते।।
मैं दर्शन ज्ञान स्वरूपी मेरी चैतन्य निशानी।।1।।

अब समकित सावन आया, चिन्मय आनन्द बरसता।
भीगा है कण-कण मेरा हो गई अखण्ड सरसता।।
समकित की मधु चितवन में झलकी है मुक्ति निशानी।।2।।

ये शाश्वत भव्य जिनालय, है शान्ति बरसती इनमें।
मानो आया सिद्धालय, मेरी बस्ती हो उसमें।।
मैं हूँ शिवपुर का वासी भव-भव की खतम कहानी।।3।।

(50) आओ रे आओ रे.....

आओ रे आओ रे ज्ञानानन्द की डगरिया।
तुम आओ रे आओ, गुण गाओ रे गाओ।
चेतन रसिया आनन्द रसिया।।टेक।।

बड़ा अचम्भा होता है, क्यों अपने से अनजान रे।
पर्यायों के पार देख ले, आप स्वयं भगवान रे।।1।।

दर्शन-ज्ञान स्वभाव में, नहीं ज्ञेय का लेश रे।
निज में निज को जान कर तजो ज्ञेय का वेश रे।।2।।

मैं ज्ञायक मैं ज्ञान हूँ, मैं ध्याता मैं ध्येय रे।
ध्यान-ध्येय में लीन हो, निज ही निज का ज्ञेय रे।।3।।

(51) शुद्धात्मा का श्रद्धान होगा...

शुद्धात्मा का श्रद्धान होगा, निज आत्मा तब भगवान होगा,
निज में निज, पर में पर भासक, सम्यग्ज्ञान होगा......।।टेक।।

नव तत्त्वों में छिपी हुई जो ज्योति उसे प्रगटायेंगे,
पर्यायों से पार त्रिकाली, ध्रुव को लक्ष्य बनायेंगे,
शुद्ध चिदानंद रसपान होगा, निज आत्मा...........।।1।।

निज चैतन्य महा हिमगिरि से परिणति-घन टकरायेंगे,
शुद्ध अतीन्द्रिय आनंद रसमय, अमृत जल बरसायेंगे,
मोह महामल प्रक्षाल होगा, निज आत्मा...........।।2।।

आत्मा के उपवन में रत्नत्रय पुष्प खिलायेंगे,
स्वानुभूति के सौरभ से, निज नंदन वन महकायेंगे,
संयम से सुरभित उद्यान होगा, निज आत्मा...........।।3।।

(52) मैं ज्ञान मात्र बस....

मैं ज्ञान मात्र बस, ज्ञायक हूँ, आनंदमयी बस ज्ञायक हूँ।
ज्ञान में ही बस रमेंगे-2, मुक्ति पाने के लिए।
मोह तज निज को वरेंगे, निज में समाने के लिए।।टेक।।

आत्मा ही ज्ञेय है बस, आत्मा ही ज्ञान है;
आत्मा ही ध्येय है बस, आत्मा ही ज्ञान है।
चाह कुछ बाकी नहीं है, मुक्ति पाने के लिए।।
मोह तज..................।।1।।

ज्ञेय जैसा ज्ञान होता, ज्ञान ज्ञेयाकार है;
किंतु वह परमार्थ से ही, ज्ञान का आकार है।
ज्ञान को ही ज्ञान जाने, मुक्ति पाने के लिए।।
मोह तज..................।।2।।

विषय-सुख अब नहीं भाते, ज्ञेय की वांछा नहीं;
स्वर्ग की कामना मन में, सुहाती है नहीं।
स्वर्ग में भी स्वयं की सृष्टि रचाने के लिए।।
मोह तज..................।।3।।

****

(53) आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी का अभिनन्दन

(दोहा)

श्री चौबीस जिनेश दृग-ज्ञान-चरण में धार।
गणधर कुल के पद-कमल में वन्दन शत बार।।1।।

प्राकृत संस्कृत में रचे आचार्यों ने ग्रन्थ।
जन-जन को दिखला रहे शिवपुर पथ निर्ग्रन्थ।।2।।

अति गम्भीर रहस्य को भाषा देश मँझार।
मर्म ग्रन्थ का खोलते बुधजन का उपकार।।3।।

मौलिक प्रतिभा के धनी बहुश्रुत जिन उर धार।
मोक्षमार्ग परकाश के टोडरमल करतार।।4।।

स्याद्वादमय सन्तुलन दूर करे अज्ञान।
सम्यग्ज्ञान सुचन्द्रिका करे मोह की हान।।5।।

(वीरछन्द)

मोक्षमार्ग के मर्म प्रकाशक टोडरमल का अभिनन्दन।
जिनवाणी के रसिक, उन्हें आचार्य-कल्प कह करें नमन।।
रूढ़िवाद के प्रबल विरोधी मिथ्यामत पर किया प्रहार।
हे विद्वान शिरोमणि! तुमको नमें मुमुक्षु शत-शत बार।।6।।

वीतराग-विज्ञान भाव से परमेष्ठी ही पूज्य अहो!
वीतरागता पोषक वाणी पढ़ने-सुनने योग्य कहो।।
है अनादि से जीव कर्म से बँधा हुआ पर्यायों में।
स्वयं-स्वयं को भूल रहा तो भटक रहा चहुँगतियों में।।7।।

द्रव्य स्वतन्त्र अनादि-निधन हैं स्वयं परिणमित होते हैं।
भ्रम से जीव दुखी जग में भ्रम मिटने से दुख मिटते हैं।।

दुख के कारण मिटने से ही सिद्ध प्रभू हैं परम सुखी।
तत्त्वविचार करें यदि हम तो हम भी होंगे परम सुखी।।8।।

इन्द्रिय-ज्ञान जानता तन को अतः एकता तन से की।
सात प्रयोजनभूत तत्त्व की मिथ्या श्रद्धा करे दुखी।।
मिथ्या श्रद्धा के संग में सब ज्ञान-चरित भी मिथ्या हों।
जान-बूझ कर मूढ़ रहे यह अरे! मोह-महिमा देखो।।9।।

मिथ्यामत बहु प्रचलित जग में अगृहीत-मिथ्या पोषक।
जिनमत में भी कल्पित रचना तीव्र-कषायी जीवों कृत।।
कुगुरु कुदेवादिक सेवन ही मिथ्याश्रद्धा पुष्ट करे।
देव धर्म गुरु हैं सर्वोत्तम इनसे ही शिव-मार्ग चले।।10।।

जिन-आगम अभ्यास करे पर मिथ्या श्रद्धा नहीं टले।
कोइ एक नय पक्ष रहे या सबको एक समान लखे।।
मोक्षमार्ग दो नहीं किन्तु दो तरह कथन करता आगम।
तत्त्व विचार करे तो सम्यग्दर्शन पथ पर प्रथम कदम।।11।।

वीतरागता के पोषक ही कामधेनु चारों अनुयोग।
उनकी शैली नहिं जाने तो कैसे हो सम्यक् उपयोग।।
शास्त्रों का अभ्यास करे यदि स्याद्वादयुत दृष्टि से।
मोक्षमार्ग का प्रथम चरण है आगम-ज्ञान सुदृष्टि से।।12।।

द्रव्य-भाव-नोकर्म रहित पर्याय-शुद्ध ही मोक्षस्वरूप।
अतः भव्य पुरुषार्थ करें तो सहज प्रगट हो सिद्धस्वरूप।।
तत्त्वज्ञान-श्रद्धान सहित रागादि घटाने से शिव-पन्थ।
तत्त्वार्थों का हो यथार्थ श्रद्धान कहें समकित, निर्ग्रन्थ।।13।।

(दोहा)

पण्डितगण के भी गुरु विद्वद्‌जन सिरमौर।
अभिनन्दन है आपका आप-समान न और।।14।।

(54) चौबीस तीर्थंकर स्तवन

जो अनादि से व्यक्त नहीं था त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक भाव।
वह युगादि में किया प्रकाशित वन्दन **ऋषभ** जिनेश्वर राव।।1।।
जिसने जीत लिया त्रिभुवन को मोह शत्रु वह प्रबल महान।
उसे जीतकर शिवपद पाया वन्दन **अजितनाथ** भगवान।।2।।
काललब्धि बिन सदा असम्भव निज सन्मुखता का पुरुषार्थ।
संभव जिनवर ने स्वकाल में प्रकट किया सम्यक् पुरुषार्थ।।3।।
त्रिभुवन जिनके चरणों का अभिनन्दन करता तीनों काल।
वे स्वभाव का **अभिनन्दन** कर पहुँचे शिवपुर में तत्काल।।4।।
निज आश्रय से ही सुख होता यही सुमति जिन बतलाते।
सुमतिनाथ प्रभु की पूजन कर भव्य जीव शिवसुख पाते।।5।।
पद्मप्रभ के पद-पंकज की सौरभ से सुरभित त्रिभुवन।
गुण अनन्त के सुमनों से शोभित श्री जिनवर का उपवन।।6।।
श्री **सुपार्श्व** के शुभ सु-पार्श्व में जिनकी परिणति करे विराम।
वे पाते हैं गुण अनन्त से भूषित सिद्ध सदन अभिराम।।।7।।
चारु चन्द्र-सम सदा सुशीतल चेतन **चन्द्रप्रभ** जिनराज।
गुण अनन्त की कला विभूषित प्रभु ने पाया निजपद राज।।8।।
पुष्पदन्त-सम गुण आवलि से सदा सुशोभित हैं भगवान।
मोक्षमार्ग की सुविधि बताकर भविजन का करते कल्याण।।9।।
चन्द्र-किरण सम **शीतल** वचनों से हरते जग का आताप।
स्याद्वादमय दिव्यध्वनि से मोक्षमार्ग बतलाते आप।।10।।
त्रिभुवन के श्रेयस्कर हैं **श्रेयांसनाथ** जिनवर गुणखान।
निज स्वभाव ही परम श्रेय का केन्द्र बिन्दु कहते भगवान।।11।।
शत इन्द्रों से पूजित जग में **वासुपूज्य** जिनराज महान।
स्वाश्रित परिणति द्वारा पूजित पंचम भाव गुणों की खान।।12।।

निर्मल भावों से भूषित हैं जिनवर **विमलनाथ** भगवान।
राग-द्वेष मल का क्षय करके पाया सौख्य अनन्त महान।।13।।

गुण अनन्तपति की महिमा से मोहित है यह त्रिभुवन आज।
जिन **अनन्त** को वन्दन करके पाऊँ शिवपुर का साम्राज्य।।14।।

वस्तु-स्वभाव धर्मधारक हैं धर्म धुरन्धर नाथ महान।
ध्रुव की धुनमय धर्म प्रकट कर वन्दित **धर्मनाथ** भगवान।।15।।

रागरूप अंगारों द्वारा दहक रहा जग का परिणाम।
किन्तु शान्तिमय निजपरिणति से शोभित **शान्तिनाथ** भगवान।।16।।

कुन्थु आदि जीवों की भी रक्षा का जो देते उपदेश।
स्व-चतुष्टय में सदा सुरक्षित **कुन्थुनाथ** जिनवर परमेश।।17।।

पंचेन्द्रिय विषयों से सुख की अभिलाषा है जिनकी अस्त।
धन्य-धन्य **अरनाथ** जिनेश्वर राग-द्वेष अरि किए परास्त।।18।।

मोह-मल्ल पर विजय प्राप्त कर जो हैं त्रिभुवन में विख्यात।
मल्लिनाथ जिन समवसरण में सदा सुशोभित हैं दिन रात।।19।।

तीन कषाय चौकड़ी जयकर मुनि-सु-व्रत के धारी हैं।
वन्दन जिनवर **मुनिसुव्रत** जो भविजन को हितकारी हैं।।20।।

नमि जिनवर ने निज में नमकर पाया केवलज्ञान महान।
मन-वच-तन से करूँ नमन सर्वज्ञ जिनेश्वर हैं गुणखान।।21।।

धर्म-धुरा के धारक जिनवर धर्म-तीर्थ रथ संचालक।
नेमिनाथ जिनराज वचन नित भव्यजनों के हैं पालक।।22।।

जो शरणागत भव्यजनों को कर लेते हैं आप समान।
ऐसे अनुपम अद्वितीय पारस हैं **पार्श्वनाथ** भगवान।।23।।

महावीर सन्मति के धारक वीर और अतिवीर महान।
चरण-कमल का अभिनन्दन है वन्दन **वर्धमान** भगवान।।24।।

*****

(55) विदेहक्षेत्र–स्थित बीस तीर्थंकर स्तवन

स्वचतुष्टय की सीमा में, सीमित हैं **सीमन्धर** भगवान।
किन्तु असीमित ज्ञानानन्द से सदा सुशोभित हैं गुणखान।।1।।

युगल धर्ममय वस्तु बताते नय-प्रमाण भी उभय कहे।
युगमन्धर के चरण-युगल में, दर्श-ज्ञान मम सदा रमे।।2।।

दर्शन-ज्ञान बाहुबल धरकर, महाबली हैं **बाहु** जिनेन्द्र।
मोह-शत्रु को किया पराजित शीश झुकाते हैं शत इन्द्र।।3।।

जो सामान्य-विशेष रूप उपयोग **सुबाहु** सदा धरते।
श्री सुबाहु के चरण-कमल में भविजन नित वन्दन करते।।4।।

शुद्ध स्वच्छ चेतनता ही है जिनकी सम्यक् जाति महान।
अन्तर्मुख परिणति में लखते वन्दन **संजातक** भगवान।।5।।

निज स्वभाव से स्वयं प्रकट होती है जिनकी प्रभा महान।
लोकालोक प्रकाशित होता धन्य **स्वयंप्रभ** प्रभु का ज्ञान।।6।।

चेतनरूप वृषभमय आनन से जिनकी होती पहचान।
वृषभानन प्रभु के चरणों में नमकर परिणति बने महान।।7।।

वीर्य अनन्त प्रकट कर प्रभुवर भोगें निज आनन्द महान।
ज्ञान लखें ज्ञेयाकारों में धन्य **अनन्तवीर्य** भगवान।।8।।

सूर्य-प्रभा भी फीकी पड़ती ऐसी चेतन प्रभा महान-
धारण कर जिनराज **सूर्यप्रभ** देते जग को सम्यग्ज्ञान।।9।।

अहो विशाल कीर्ति धारण कर शत इन्द्रों से वन्दित हैं।
श्री **विशालकीर्ति** जिनवर नित, त्रिभुवन से अभिनन्दित हैं।।10।।

स्वानुभूतिमय वज्र धार कर, मोह शत्रु पर किया प्रहार।
वन्दन करूँ **वज्रधर** जिन को, भोगें नित आनन्द अपार।।11।।

चारुचन्द्र-सम आनन जिनका, हरण करे जग का आताप।
चन्द्रानन जिन चरण-कमल में प्रक्षालित हों सारे पाप।।12।।

दर्शन-ज्ञान सुबाहु भद्र लख, भद्र भव्य भूलें आताप।
वन्दन **भद्रबाहु** जिनवर को मोह नष्ट हों अपने आप।।13।।

गुण अनन्त वैभव के धारी, सदा **भुजंगम** जिन परमेश।
जिनकी विषय-विरक्त वृत्ति लख भोग-भुजंग हुए निस्तेज।।14।।

हे **ईश्वर**! जग को दिखलाते निज में ही निज का ऐश्वर्य।
निज परिणति में प्रकट हुए हैं, दर्शन-ज्ञान-वीर्य-सुख कार्य।।15।।

निज-वैभव की परम प्रभा से, शोभित **नेमप्रभ** जिनराज।
ध्रुव की धुनमय धर्म-धुरा से, पाया गुण अनन्त साम्राज्य।।16।।

परम अहिंसामय परिणति से शोभित **वीरसेन** भगवान।
गुण अनन्त की सेना में हो व्याप्त द्रव्य तुम वीर महान।।17।।

सहज सरल स्वाभाविक गुण से भूषित **महाभद्र** भगवान।
भद्र जनों द्वारा पूजित हैं, अत: श्रेष्ठ हैं भद्र महान।।18।।

गुण अनंत की सौरभ से है जिनका यश त्रिभुवन में व्याप्त।
धन्य-धन्य जिनराज **यशोधर** एक मात्र शिवपथ में आप्त।।19।।

मोह शत्रु से अविजित रहकर, अजितवीर्य के धारी हैं।
वन्दन **अजितवीर्य** जिनवर जो त्रिभुवन के उपकारी हैं।।20।।

*****

।। पद्यानुवाद खण्ड ।।

(56) अपूर्व अवसर...

(श्रीमद् रायचन्द्रजी विरचित गुजराती 'अपूर्व अवसर'
का
हिंदी पद्यानुवाद)

अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा,
कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब।
सम्बन्धों का बंधन तीक्षण छेद कर,
विचरूँगा कब महत्पुरुष के पंथ जब।।अपूर्व...1।।

उदासीन वृत्ती हो सब परभाव से,
यह तन केवल संयम हेतु होय जब।
किसी हेतु से अन्य वस्तु चाहूँ नहीं,
तन में किंचित् भी मूर्च्छा नहिं होय जब।।अपूर्व...2।।

दर्श मोह क्षय से उपजा है बोध जो।
तन से भिन्न मात्र चेतन का ज्ञान जब।।
चरित-मोह का क्षय जिससे हो जायेगा।
वर्ते ऐसा निज स्वरूप का ध्यान जब।।अपूर्व...3।।

आत्मलीनता मन-वचन-काया योग की,
मुख्यरूप से रही देह पर्यंत जब।
भयकारी उपसर्ग परिषह हो महा,
किन्तु न होवेगा स्थिरता का अन्त जब।।अपूर्व...4।।

संयम ही के लिए योग की वृत्ति हो,
निज आश्रय से, जिन आज्ञा अनुसार जब।

वह प्रवृत्ति भी क्षण-क्षण घटती जाएगी,
होऊँ अन्त में निजस्वरूप में लीन जब।।अपूर्व...5।।

पंच विषय में राग-द्वेष कुछ हो नहीं,
अरु प्रमाद से होय न मन को क्षोभ जब।
द्रव्य-क्षेत्र अरु काल-भाव प्रतिबन्ध बिन,
वीतलोभ हो विचरूँ उदयाधीन जब।।अपूर्व...6।।

क्रोध भाव के प्रति हो क्रोध स्वभावता,
मान भाव प्रति दीनभावमय मान जब।
माया के प्रति माया साक्षी भाव की,
लोभ भाव प्रति हो निर्लोभ समान जब।।अपूर्व...7।।

बहु उपसर्ग कर्ता के प्रति भी क्रोध नहिं,
वन्दे चक्री तो भी मान न होय जब।
देह जाय पर माया नहिं हो रोम में,
लोभ नहिं हो प्रबल सिद्धि निदान जब।।अपूर्व...8।।

नग्न भाव मुंडभाव सहित अस्नानता,
अदन्तधोवन आदि परम प्रसिद्ध जब।
केश-रोम-नख आदि अंग शृंगार नहिं,
द्रव्य-भाव संयममय निर्ग्रन्थ-सिद्ध जब।।अपूर्व...9।।

शत्रु-मित्र के प्रति वर्ते समदर्शिता,
मान-अमान में वर्ते निज स्वभाव जब।
जन्म-मरण में हो नहिं न्यून-अधिकता,
भव-मुक्ति में भी वर्ते समभाव जब।।अपूर्व...10।।

एकाकी विचरूँगा जब शमशान में,
गिरि पर होगा बाघ सिंह संयोग जब।

अडोल आसन और न मन में क्षोभ हो,
जानूँ पाया परम मित्र संयोग जब॥अपूर्व...11॥

घोर तपश्चर्या में, तन सन्ताप नहिं,
सरस अशन में भी हो नहीं प्रसन्न मन।
रजकण या ऋद्धि वैमानिक देव की।
सबमें भासे पुद्गल एक स्वभाव जब॥अपूर्व...12॥

ऐसे प्राप्त करूँ जय चारित्रमोह पर,
पाऊँगा तब करण अपूरव भाव जब।
क्षायिकश्रेणी पर होऊँ आरूढ़ जब,
अनन्य चिंतन अतिशय शुद्धस्वभाव जब॥अपूर्व...13॥

मोह स्वयंभूरमण उदधि को तैर कर,
प्राप्त करूँगा क्षीणमोह गुणस्थान जब।
अन्य समय में पूर्णरूप वीतराग हो,
प्रगटाऊँ निज केवलज्ञान निधान जब॥अपूर्व...14॥

चार घातिया कर्मों का क्षय हो जहाँ,
हो भवतरु का बीज समूल विनाश जब।
सकल ज्ञेय का ज्ञाता-दृष्टा मात्र हो,
कृतकृत्य प्रभु वीर्य अनन्त प्रकाश जब॥अपूर्व...15॥

चार अघाति कर्म जहाँ वर्ते प्रभो,
जली जेवरीवत् हो आकृति मात्र जब।
जिनकी स्थिति आयु कर्म आधीन है,
आयु पूर्ण हो तो मिटता तन-पात्र जब॥अपूर्व...16॥

मन-वच-काया अरु कर्मों की वर्गणा,
छूटे जहाँ सकल पुद्गल सम्बन्ध जब।

यही अयोगी गुणस्थान तक वर्तता,
महाभाग्य सुखदायक पूर्ण अबन्ध जब।।अपूर्व...17।।
इक परमाणु मात्र की न स्पर्शता,
पूर्ण कलंक-विहीन अडोल स्वरूप जब।
शुद्ध निरंजन चेतन मूर्ति अनन्यमय,
अगुरुलघु अमूर्त सहज पदरूप जब।।अपूर्व...18।।
पूर्व प्रयोगादिक कारक के योग से,
ऊर्ध्वगमन सिद्धालय में सुस्थित जब।
सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुख में,
अनन्तदर्शन ज्ञान अनन्त सहित जब।।अपूर्व...19।।
जो पद झलके श्री जिनवर के ज्ञान में,
कह न सके पर वह भी श्री भगवान जब।
उस स्वरूप को अन्य वचन से क्या कहूँ,
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब।।अपूर्व...20।।
यही परमपद पाने को धर ध्यान जब,
शक्तिविहीन अवस्था मनरथरूप जब।
तो भी निश्चय 'राजचन्द्र' के मन रहा,
प्रभु आज्ञा से होऊँ वही स्वरूप जब।।अपूर्व...21।।

****

ज्ञान-सिन्धु भगवान आत्मा...

ज्ञान-सिन्धु भगवान आत्मा प्रकट हुआ सर्वांग अहो!
डुबा दिया है मोह सहित विभ्रम की आड़ी चादर को।।
एक साथ सब जीव लोक के शान्त सिन्धु में मग्न रहें।
अहो शान्त रस की लहरें सम्पूर्ण लोक तक जा उछलें।।

– समयसार, कलश 32

मुनि सकलचन्द्रकीर्ति द्वारा विरचित

(57) दृष्टाष्टक स्तोत्र

(पद्यानुवाद)

(हरिगीतिका)

दर्शन किये जिन-भवन के भव-ताप नाशक जो अहो!
जिसको अपरिचित विभव की उत्पत्ति का कारण कहो।।
जिसका शिखर है दुग्ध या दधिफेन[1] सम उज्ज्वल धवल।
जिसके कंगूरों में लगीं ध्वज-पंक्तियाँ शोभित विमल।।1।।

दर्शन किये जिन-भवन के त्रय लोक श्री[2] जिनमें बसे।
जो निरन्तर ऋद्धिधारी मुनिगणों से सेव्य है।।
विद्याधरों अरु सुरगणों की नारियों से बिखरती-
दिव्य पुष्पांजली से शोभित हुई जिसकी मही।।2।।

दर्शन किये जिन-भवन के जो देवियों के गीत से -
गूँजता है, और जिसके अति विशाल गवाक्ष हैं -
जिनमें अनेक प्रकार मणियों की चमकती कांति भी-
चहुँ ओर फैली है अहो! जिसको नमन करते सभी।।3।।

दर्शन किये जिन-भवन के भूतल जहाँ अरु दश दिशा।
देव किन्नर यक्ष अरु गंधर्व ने कर में लिया -
वेणु निर्मित वाद्य के संगीत की ध्वनि मधुर से।
गूँजता चहुँ ओर जब वे नमन करते भक्ति से।।4।।

दर्शन किये जिन-भवन के जहँ पुष्पमाला डोलती।
गुंजार करते भ्रमर-से अलकावली[3] जहँ शोभती।।

---

1. समुद्र के फेन के समान 2. लक्ष्मी 3. बेलों की पंक्तियाँ।

मधुर ध्वनि अरु वाद्य-लययुत नाचती वारांगना -
के वलय-नूपुर-नाद से रमणीय भासित हो रहा।।5।।

दर्शन किये जिन-भवन के जहँ कलश शत अरु आठ हैं।
जो स्वर्णमय, मणिरत्न निर्मित, गूँजते शुभ पाठ हैं।।
चामरादिक अष्ट मंगल-द्रव्य से शोभित हुआ-
वह भवन निर्मल मोतियों के हार से भूषित हुआ।।6।।

दर्शन किये जिन-भवन के जिसके शिखर उत्तुंग में।
कर्पूर चन्दन आदि सुरभित द्रव्य निर्मित धूप के -
धूम्र से मानो घटायें मेघ की आकाश में।
फहरा रही हैं पताकायें वायु के आघात से।।7।।

दर्शन किये जिन-भवन के जहँ यक्ष गण अति नम्र हैं।
वे धवल आतप-पत्र की मंगलमयी छाया गहें।।
सुन्दर मनोहर श्वेत चामर-पंक्तियाँ वे ढोरते।
भामण्डलों की दीप्ति से जिनबिम्ब जिनमें शोभते।।8।।

दर्शन किये जिन-भवन के जिसकी धरा अति शोभती।
वह रत्नपृथ्वी विविध सुमन सु-माल से मन-मोहती।।
तिलक-तरु सम शोभता जो मंगलोत्तम शरण है।
जो चन्द्र-सम सब मुनिवरों से नित्य वंदन योग्य है।।9।।

दर्शन किये जिन-भवन के उत्तुंग सिंहासन जहाँ।
वह कनकमय मणिजड़ित अरु जिन-बिम्ब से शोभित हुआ।।
जो नित्य निरुपम कीर्ति गुंजित मुझे मंगलरूप है।
जो सकलचन्द्र-मुनीन्द्र द्वारा नित्य वंदन योग्य है।।10।।

*****

(58) आचार्य पद्मनन्दी देव द्वारा विरचित

दश भक्ति–संग्रह (भत्ति–संगहो)

(पद्यानुवाद)

।। मंगलाचरण ।।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।
चत्तारि मंगलं अरहंता मंगलं सिद्धा मंगलं
साहू मंगलं केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलं।
चत्तारि लोगुत्तमा अरहंता लोगुत्तमा सिद्धा लोगुत्तमा
साहू लोगुत्तमा केवली पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि – अरहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवली पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।।

(वीरछन्द)

नमस्कार हो अर्हन्तों को, सिद्धों को आचार्यों को।
नमूँ उपाध्यायों को वन्दूँ जग के सब मुनिराजों को।।1।।
मंगल चार जगत में श्री अरहन्त सिद्ध प्रभु मंगल हैं।
साधू मंगल और केवली-भाषित धर्म सुमंगल हैं।।2।।
उत्तम चार लोक में हैं अर्हन्त सिद्ध प्रभु उत्तम हैं।
साधु लोक में उत्तम जिनवर-कथित धर्म सर्वोत्तम है।।3।।
शरण चार हैं मुझे, श्री अर्हन्त सिद्ध की शरण गहूँ।
साधु-शरण में जाऊँ केवलि-कथित धर्म की शरण लहूँ।।4।।

1. सिद्ध भक्ति

अशरीरी चैतन्य स्वरूपी दर्शन-ज्ञान सुशोभित हैं।
निराकार साकार सिद्ध प्रभु के प्रसिद्ध ये लक्षण हैं।।1।।

मूल और उत्तर प्रकृति के बंध-उदय-सत्ता विरहित।
मंगलमय गुण अष्ट अलंकृत सिद्ध प्रभु संसार रहित।।2।।
नष्ट हुए हैं अष्टकर्म अरु नित्य निरंजन आनंदकंद।
अष्ट गुणान्वित परम तृप्त लोकाग्र विराजें सिद्ध महन्त।।3।।
कर्मजन्य मल नष्ट हुए प्रविशुद्ध ज्ञानमय सत्तारूप।
मुझ पर हों प्रसन्न त्रिभुवन के मुकुटमणि हे सिद्ध प्रभु।।4।।
गमनागमन विमुक्त हुए जो किया कर्मरज का संहार।
शाश्वत सुख को प्राप्त सिद्ध प्रभु वन्दनीय हैं बारंबार।।5।।
मंगलमय अरु जयस्वरूप जो निर्मल दर्शनज्ञान स्वरूप।
तीन लोक के मुकुट सिद्ध-भगवन्तों को मैं सदा नमूँ।।6।।
समकित दर्शन ज्ञान वीर्य सूक्ष्मत्व और अवगाहस्वरूप।
अगुरुलघु अरु अव्याबाधी अष्ट गुणान्वित सिद्ध प्रभु।।7।।
तप से सिद्ध तथा नय संयम चारित से जो सिद्ध हुए।
ज्ञान और दर्शन से सिद्ध हुए उनको मैं नमन करूँ।।8।।

(कायोत्सर्ग करें)

अंचलिका

हे प्रभु! सिद्ध भक्ति करके अब मैंने कायोत्सर्ग किया।
इसमें लगे हुए दोषों का अब मैं आलोचन करता।।
समकित दर्शन ज्ञान चरितयुत अष्टकर्म बिन गुण संयुक्त।
तप-नय रत्नत्रय से सिद्ध हुए लोकाग्र विराजे सिद्ध।।
उन त्रिकालवर्ती सिद्धों को वन्दन कर हम धन्य हुए।
दुख विनष्ट हों कर्म नष्ट हों बोधिलाभ हो सुगति मिले।।
जिनगुण संपति मुझे प्राप्त हो मरणसमाधि से भव-पार।
पूजा स्तुति कायोत्सर्ग करूँ आचार्यों के अनुसार।।

2. श्रुत भक्ति

अर्हत् वचनों से प्रसूत गणधर विरचित हैं द्वादश अंग।
विविध अनेक अर्थ गर्भित हैं धारें सुधी मुनीश्वर गण।।

अग्रद्वार शिवपुर का, मिलता व्रताचार फल, ज्ञेय-प्रदीप।
त्रिभुवन सारभूत श्रुत को मैं नितप्रति वन्दूँ भक्ति सहित।।1।।

जिनध्वनि से निसृत वचनों को इन्द्रभूति आदिक गणधर-
सुनकर धारण करें प्रकाशित, द्वादशांग को करूँ नमन।।2।।

कोटि एक सौ बारह एवं लाख तिरासी अट्ठावन।
सहस पाँच पद भूषित अंग-प्रविष्ट ज्ञान को करूँ नमन।।3।।

अंग-बाह्य श्रुत में पद हैं कुल आठ करोड़ और इक लाख।
आठ हजार एक सौ पचहत्तर पद को नित नमता माथ।।4।।

अर्हन्तों से कहा गया जो गणधर देवों ने गूँथा।
भक्ति सहित श्रुतज्ञान महोदधि को मैं नमस्कार करता।।5।।

(कायोत्सर्ग करें)

अंचलिका

हे प्रभु! श्रुत-भक्ति करके अब मैंने कायोत्सर्ग किया।
इसमें लगे हुए दोषों का अब मैं आलोचन करता।।
अंग-उपांग प्रकीर्णक प्राभृत अरु परिकर्म प्रथम अनुयोग।
सूत्र पूर्वगत तथा चूलिका स्तुति धर्मकथामय बोध।।
अर्चन पूजन वंदन नमन करूँ होवें दुख-कर्म-क्षय।
बोधिलाभ हो सुगति-गमन हो जिनगुण संपति हो अक्षय।।2।।

3. चारित्र भक्ति

(वीरछन्द)

जो भव-दुख से डरते हैं अरु अविनाशी सुख को चाहें।
पाप शान्त हैं निर्मल मति हैं शीघ्र मुक्ति सुख को पावें।।
वे तेजस्वी प्राणी धारें जिन-भाषित चारित्र महान।
मोक्ष-महल में जाने हेतु जो विशाल अनुपम सोपान।।1।।

(हरिगीतिका)

सर्ववेदी वीर-जिन द्वारा कहा यह धर्म है।
लोकत्रय के सर्व जीवों को सुहित का मर्म है।।2।।

घातिकर्म विनाशकर्ता, घातिकर्म विनाश को।
चारित्र पाँच प्रकार कहते भव्य जीवों को अहो।।3।।

चारित्र सामायिक कहा अरु छेद-उप-स्थापना।
परिहार-शुद्धि और सूक्ष्म-साम्पराय सुबुध कहा।।4।।

चारित्र पंचम यथाख्यात तथाख्यात कहें इसे।
यह पाँच विध चारित्र मंगल पाप-शोधक भी कहें।।5।।

अहिंसादिक पाँच भेद कहें जिनेश्वर व्रत महा।
पाँच समिति पाँच इन्द्रिय का सुनिग्रह भी कहा।।6।।

षडावश्यक भू-शयन अस्नान एवं नग्नता।
खड़े हो इक बार लें आहार, दन्त न धोवना।।7।।

केशलोंच करें कहे ये मूलगुण अठबीस हैं।
धर्म-दश त्रय-गुप्ति एवं शील उत्तर-गुण कहे।।8।।

बाईस परीषह जयादिक उत्तर कहे गुण साधु के।
अन्य विविध प्रकार सहकारी कहे गुण-मूल के।।9।।

यदि राग द्वेष विमोह से हो हानि गुणसमुदाय में।
वन्दना कर सिद्ध की परिहार हो उस दोष का।।10।।

सर्व संयम-धर मुमुक्षु दोष के परित्याग से।
मोक्ष-सुख पायें त्वरित वे सकल संयम सिद्धि से।।11।।

संयम अहिंसा और तपमय धर्म मंगल श्रेष्ठ है।
इस धर्म में जो मन लगाये देव भी उसको नमें।।12।।

(कायोत्सर्ग करें)

अंचलिका

(वीरछन्द)

हे प्रभु! चारित-भक्ति करके मैंने कायोत्सर्ग किया।
इसमें लगे हुए दोषों का अब मैं आलोचन करता।।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान सुशोभित सर्वश्रेष्ठ शिवमार्ग स्वरूप।
पंच महाव्रत पंच समिति त्रय-गुप्ति निर्जरा क्षमा स्वरूप।।1।।

ज्ञान-ध्यान का कारण है यह सम्यक् चारित धर्म महान।
निज स्वरूप में लीनरूप सामायिक का यह द्वार महान।।
अर्चन पूजन वंदन नमन करूँ होवें दुख-कर्म-क्षय।
बोधिलाभ हो सुगति-गमन हो जिनगुण संपति हो अक्षय।।2।।

4. आचार्य भक्ति

देश जाति कुल शुद्ध मनो-वच-तन विशुद्ध से जो संयुक्त।
करें आपके पद-पंकज जग में मेरा कल्याण सुनित्य।।1।।
स्व-पर समय के ज्ञाता हैं जो आगम हेतु जाननहार।
श्रुत-स्वरूप के ज्ञाता मुनिवर श्रुत-स्वरूप के जाननहार।।2।।
बाल वृद्ध रोगी गिलान आदिक सब मुनियों के अपराध।
जानें भलीभाँति अरु उनको दृढ़-चारित्र करावनहार।।3।।
गुप्ति समिति व्रत और अन्य को करते हो शिवपथ संयुक्त।
उपाध्याय गुण निलय और तुम साधु गुणों से भी हो युक्त।।4।।
भू-सम क्षमा शील हो निर्मल जल सम रहते सदा प्रसन्न।
कर्मदाह्य को अग्नि-तुल्य हो वायु समान सदा निःसंग।।5।।
गगन-तुल्य निर्लेप, सिन्धु-सम हो, गंभीर गुणों की खान।
आचार्यों के चरण-कमल में निर्मल मन से करूँ प्रणाम।।6।।
इस संसार भयानक वन में भटक रहे जो भवि प्राणी।
तव प्रसाद से ही पाते हैं मोक्षमार्ग नित सुखदानी।।7।।

अशुभ लेश्या से विहीन तुम शुभ लेश्याओं से संयुक्त।
आर्त-रौद्र दुर्ध्यान रहित हो धर्म शुक्ल से हो संयुक्त।।8।।
अवग्रह ईहा अरु अवाय धारणा गुणों से भूषित हो।
हे श्रुतार्थ-भावना सहित गुरु! तुम्हें भाव से नमन करूँ।।9।।
प्रभो! आपका गुण स्तवन मुझ अज्ञानी से किया गया।
गुरु भक्ति संयुक्त मुझे, हो बोधिलाभ उपलब्ध सदा।।10।।

(कायोत्सर्ग करें)

अंचलिका

हे प्रभु! सूरि भक्ति करके अब मैंने कायोत्सर्ग किया।
इसमें लगे हुए दोषों का अब मैं आलोचन करता।।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित युत पंचाचार धरें आचार्य।
श्रुत उपदेशक उपाध्याय, रत्नत्रय लीन रहें मुनिराज।।
अर्चन पूजन वंदन नमन करूँ होवें दुख-कर्म-क्षय।
बोधिलाभ हो सुगतिगमन हो जिनगुण संपति हो अक्षय।।

5. योग भक्ति

मैं अनगार गुणों से भूषित गणधर की स्तुति करता।
दोनों हाथ जोड़, मस्तक पर अंजुलि धर वंदन करता।।1।।
दो प्रकार के भाव जीव के सम्यक् और कहे मिथ्या।
तज मिथ्यात्व गहें जो सम्यक् मैं उनको वंदन करता।।2।।
राग-द्वेष से मुक्त, दण्ड-त्रय से विमुक्त, त्रय-शल्य विहीन।
गारव-त्रय प्रविमुक्त, रत्नत्रय से विशुद्ध को नमन करूँ।।3।।
कृश हैं चार कषायें, चउ गति भव संसृति से जो भयभीत।
पाँचों आस्रव से विरक्त पंचेन्द्रिय विजयी को वन्दूँ।।4।।
दया करें छहकाय जीव पर छह अनायतन रहित प्रशान्त।
सप्त भयों से मुक्त सभी को अभयदान दें उन्हें नमन।।5।।

नष्ट हुए आरम्भ-परिग्रह अष्ट कर्म-संसार विनष्ट।
शोभित हुए परमपद में जो, इष्ट गुणों के ईश नमन।।6।।
नव विध ब्रह्मचर्य के धारी नव विध नय स्वरूप जानें।
जो दश विध धर्मस्थ रहें दश संयम युत को नमन करूँ।।7।।
एकादश-अंग श्रुत-पारंगत द्वादशांग में हुए कुशल।
बारह तप धारें अरु तेरह क्रिया करें जो उन्हें नमन।।8।।
चौदह-जीव समास-दयायुत चौदह परिग्रह रहित विशुद्ध।
चौदह-पूर्वों के पाठी चौदह मल वर्जित को वंदन।।9।।
एक दिवस से छह महिने तक का धारण करते उपवास।
रवि-सन्मुख तप करें, कर्म चकचूर शूर-पद में मम वास।।10।।
बहुविध प्रतिमा योग धरें वीरासन पार्श्व निषद्या धार।
नहीं थूकते, नहीं खुजाते, तन-निर्मम को नमन हजार।।11।।
ध्यान धरें अरु मौन रहें, नभ या तरु-तल में करे निवास।
लोंचे केश, न दूर करें रोगों को, उन्हें नमन शत बार।।12।।
तन मलीन, पर कर्ममलों की कल्मषता से रहित हुए।
नख अरु केश बढ़ें, तप लक्ष्मी से भूषित को नमन करें।।13।।
ज्ञान-नीर अभिषिक्त, शील-गुण भूषित, तप-सुगंध भरपूर।
राग रहित, श्रुत सहित, मुक्तिपथ नायक मुनिवर को वन्दूँ।।14।।
उग्र दीप्त अरु तप्त महातप-घोर तपों को जो धारें।
तप संयम अरु ऋद्धिसहित, सुर-पूजित को हम नमन करें।।15।।
आमौषधि खेलौषधि विप्रौषधि सर्वौषधि के धारी।
तप प्रसिद्ध कृतकृत्य हुए उन मुनिराजों को नमन करूँ।।16।।
अमृत मधु घृत क्षीरस्रावि अक्षीण महानस के धारी।
मन वच तन बल ऋद्धियुक्त को मन-वच-तन से नमन करूँ।।17।।
कोष्ठबीज पादानुसारि, संभिन्न-श्रोत्र ऋद्धिधारी।
अवग्रह ईहा में समर्थ, सूत्रार्थ निपुण मुनि को वन्दूँ।।18।।

मति-श्रुत अवधि मन:पर्ययज्ञानी अरु केवलज्ञानी को।
वन्दन जग प्रदीप्त प्रत्यक्ष परोक्ष ज्ञानधारी मुनि को।।19।।

नभ-तंतु-जल-पर्वत-अटवी-गामी जंघाधारी को।
वंदन, ऋद्धि विक्रिया, विद्याधर अरु प्रज्ञा श्रमणों को।।20।।

चतुरांगुल ऊपर एवं फल-फूलों पर चलने वाले।
अनुपम तप से पूज्य सुरासुर से वन्दित को नमन करूँ।।21।।

जीत लिया भय-उपसर्गों को इन्द्रिय और परिग्रह को।
वन्दन मोह-राग-रुष विजयी सुख-दुख समताधारी को।।22।।

राग-द्वेष से रहित और मुझसे स्तुत्य सभी पद-पूज्य।
मुनिगण को उत्तम समाधि दें मेरे भी दुख दूर करें।।23।।

(कायोत्सर्ग करें)

अंचलिका

हे प्रभु! योग भक्ति करके अब मैंने कायोत्सर्ग किया।
इसमें लगे हुए दोषों का अब मैं आलोचन करता।।
ढाई द्वीप-द्वय सिन्धु, कर्मभूमि पन्द्रह आतापन योग।
वृक्षमूल, नभवास योग, वीरासन एक पार्श्वमय योग।।1।।

कुक्कुट आसन, योग तथा उपवास पक्ष-उपवास सदा।
योग सहित सब साधु गुणों की करता हूँ मैं नित अर्चा।।
पूजन वन्दन नमन करूँ मैं होवे सब दुख-कर्म-क्षय।
बोधिलाभ हो सुगतिगमन हो जिनगुण संपति हो अक्षय।।12।।

6. निर्वाण भक्ति

नोट - प्राकृत में रचित निर्वाण भक्ति का पद्यानुवाद भैया भगवतीदासजी द्वारा संवत् 1741 में किया गया है, जो निर्वाणकाण्ड के नाम से प्रसिद्ध है।

अंचलिका

प्रभु निर्वाण भक्ति करके अब मैंने कायोत्सर्ग किया।
इसमें लगे हुए दोषों का अब मैं आलोचन करता।।

तीन वर्ष अरु साढ़े आठ माह थे शेष चतुर्थम काल।
अन्त समय पावानगरी में कार्तिक कृष्ण अमावस प्रात।।1।।

प्रात:काल नक्षत्र स्वाति में अन्तिम तीर्थंकर वर्धमान।
कर्म अघाति क्षयकर प्रभु ने पाया पद निर्वाण महान।।
चार निकायी देव तभी परिवार सहित सब आते हैं।
गन्ध पुष्प अरु चूर्ण धूप सब दिव्य वस्तुएँ लाते हैं।।2।।

निर्वाण महाकल्याणक की पूजा करते हैं भलीप्रकार।
करें अर्चना और वन्दना नमन करें वे विविध प्रकार।।
मैं भी अर्चन पूजन वन्दन नमन करूँ हो सब दुख क्षय।
बोधिलाभ हो सुगतिगमन हो जिनगुण संपति हो अक्षय।।3।।

7. तीर्थंकर भक्ति

स्तुति करूँ अनन्त केवली, तीर्थंकर भगवन्तों की।
महाप्राज्ञ रजमल विहीन, चक्री एवं जग-वन्दित की।।1।।

लोक प्रकाशक धर्म-तीर्थकर्ता-जिन को वन्दन करता।
चौबिस केवलि भगवन्तों का ही मंगल कीर्तन करता।।2।।

ऋषभ अजित संभव अभिनन्दन एवं सुमति जिनेश्वर को।
वन्दूँ पद्मप्रभ सुपार्श्व एवं चन्द्रप्रभ जिनवर को।।3।।

सुविधिनाथ या पुष्पदन्त, शीतल, श्रेयांस अरु वासुपूज्य।
विमल, अनन्त-रु धर्म शान्ति भगवन्तों को मैं नमन करूँ।।4।।

कुंथुनाथ, अरनाथ, मल्लि, मुनिसुव्रत नमि भगवंतों को।
वन्दन करूँ अरिष्टनेमि, पारस श्री वीर जिनेश्वर को।।5।।

रज मल और जरा मरणान्तक, जो मुझसे स्तुत्य हुए।
चौबीसों जिनवर तीर्थंकर भगवन् हों प्रसन्न मुझ पर।।6।।

मुझसे कीर्तित, वन्दित, पूजित, लोकोत्तम कृतकृत्य जिनेन्द्र।
ज्ञान-बोधि-आरोग्य-समाधि-लाभ सदैव प्रदान करें।।7।।

जो हैं शशि से भी अतिनिर्मल रवि से अधिक प्रभामण्डित।
सागर-सम गम्भीर, सिद्ध पद प्राप्त, मुझे भी दें सिद्धि।।8।।

8. शान्ति भक्ति

प्रभो! आपकी चरण-शरण में भक्तिवशात् न जन आते।
विविध कर्म-संतप्त भव्य-जन शान्ति हेतु शरणा लेते।।
अतिप्रचंड किरणों से रवि जब जग को व्याकुल कर देता।
चन्द्र-किरण, जल, छाया से अनुरागोत्पन्न करा देता।।1।।

क्रुद्ध सर्प से डसे मनुज के दुर्जय विष का तीव्र प्रभाव।
विद्या औषधि मन्त्र हवन जल से हो जाता शीघ्र प्रशान्त।।
जो भविजन प्रभु के चरणाम्बुज की स्तुति सन्मुख होते।
क्या आश्चर्य कि उनके आधि-व्याधि विघ्नादि शान्त होते।।2।।

तप्त-स्वर्ण-गिरि की शोभा भी ईर्ष्या करती जिनकी कान्ति।
प्रभु-चरणों में वन्दन से जग की पीड़ा हो जाती शान्त।।
प्रातकाल दैदीप्यमान रवि-किरणों का पाकर आघात।
यथा नेत्र की कान्ति विनाशक निशा विलय को होती प्राप्त।।3।।

त्रिभुवन अधिपतियों पर विजय प्राप्त करने से गर्व हुआ।
कालरूप दावानल जग में अतिशय क्रूर प्रचण्ड हुआ।।
बच सकता संसारी प्राणी कहो कौन किस विधि द्वारा।
तव पद-पंकज की स्तुति-सरिता ने यदि न उसे तारा।।4।।

लोकालोक झलकते जिसमें ऐसी ज्ञानमूर्ति जिनराज।
रत्नजड़ित सुन्दर दण्डों से शोभित श्वेत छत्रत्रय नाथ।।
जैसे गर्वित सिंह-गर्जना से जंगली हाथी भागें।
तव चरणों की पावन-स्तुति के गीतों से रोग नशें।।5।।

सुर-वनिता के लोचन-वल्लभ श्रीवर चूड़ामणि जिनराज।

बाल-दिवाकर शोभाहारी जन-प्रिय भामण्डलयुत आप।।
प्रभो! आपके चरण-कमल की स्तुति करती सहज प्रदान।
अव्याबाध अचिन्त्य अतुल अनुपम शाश्वत आनन्द प्रदान।।6।।

जबतक प्रभा-समूहयुक्त जग-भासक रवि का उदय न हो।
तब तक पंकज-वन धारण करते हैं सुप्त अवस्था को।।
हे प्रभु! जब तक उदित न होता तव चरणों का मधुर प्रसाद।
तब तक जग के जीव वहन करते रहते पापों का भार।।7।।

शान्तचित्त हों शान्ति चाहने वाले भूतलवासी जीव।
तव चरणों में शान्ति-प्राप्त करते हैं निश्चित शान्ति जिनेन्द्र।।
चरण-युगल आराध्य हमारे, पढ़ूँ शान्ति अष्टक हे नाथ!
करुणा कर अब मेरी दृष्टि निर्मल करो जिनेश्वर आज।।8।।

शशिसम निर्मल वदन, शीलगुण व्रतधारी हे शान्ति जिनेन्द्र।
शत-अठ लक्षण से शोभित तन, नमूँ जिनोत्तम कमल-नयन।।9।।

मन-वांछित पंचम चक्री हो, पूजित इन्द्र नरेन्द्रों से।
शान्ति-प्रदायक, शान्ति-हेतु मैं सोलहवें जिननाथ नमूँ।।10।।

तरु-अशोक, सुर पुष्पवृष्टि दुन्दुभि सिंहासन दिव्य-वचन।
छत्रत्रय, भामण्डल, चौंसठ चँवर, प्रातिहार्य अनुपम।।11।।

जगत् पूज्य हे शांति प्रदायक, शीश झुकाऊँ शान्ति जिनेन्द्र।
सर्व गणों को शान्ति करो, मुझ पाठक को दो शान्ति परम।।12।।

कुण्डल, मुकुट हार रत्नोंयुत इन्द्रों द्वारा पूज्य हुए।
उत्तम वंश, प्रदीप जगत के, सतत शान्ति दो प्रभो मुझे।।13।।

सम्यक् पूजक, प्रतिपालक सामान्य तपोधन यतियों को।
देश, राष्ट्र अरु नगर भूप को, हे जिन! शान्ति प्रदान करो।।14।।

राजा हो बलवान, धार्मिक, सर्वजनों का हो कल्याण।
बरसें मेघ समय पर, होवें सर्व व्याधियाँ क्षय को प्राप्त।।

जीवों को पलभर भी चोरी मारी अरु दुर्भिक्ष न हो।
सबको सुखदायी जिनवर का धर्मचक्र जयवन्त रहो।।15।।

रत्नत्रय हो सदा प्रकाशित, ऐसा द्रव्य सुदेश मिले।
समीचीन तप की वृद्धि हो, ऐसा उत्तम काल मिले।।
निर्मल परिणति हो प्रसन्न, प्रभु! ऐसा उत्तम भाव मिले।
मोक्षार्थी मुनिगण की परिणति में रत्नत्रय सुमन खिलें।।16।।

घातिकर्म क्षय किये जिन्होंने उदित हुआ कैवल्य प्रकाश।
शान्ति प्रदान करें जग को वृषभादिक चौबीसों जिनराज।।17।।

(कायोत्सर्ग करें)

अंचलिका

हे प्रभु! शान्ति भक्ति करके अब मैंने कायोत्सर्ग किया।
इसमें लगे हुए दोषों का अब मैं आलोचन करता।।
पंच महाकल्याण सुशोभित प्रातिहार्य अतिशय भूषित।
बत्तिस इन्द्रों के मणिमय किरीटयुत मस्तक से पूजित।।1।।

चक्री नारायण बलभद्र ऋषि यति अनगार सहित।
लाखों स्तुतियों के घर ऋषभादिक वीर पर्यन्त जिनेन्द्र।।
सदा अर्चना पूजा वन्दन नमन करूँ हों सब दुखक्षय।
बोधिलाभ हो सुगतिगमन हो जिनगुण संपति हो अक्षय।।2।।

9. समाधि भक्ति

हे प्रभु! निज-संवेदन लक्षण-भूषित श्रुत-चक्षु द्वारा।
केवलज्ञान-चक्षु से मंडित आज आपको देख रहा।।1।।

शास्त्राभ्यास जिनेन्द्र भक्ति संगति आर्यों की रहे सदा।
सज्जन का गुणगान करूँ मैं दोष कथन नहिं करूँ कदा।।
हित-मित-प्रिय वाणी हो सबसे आत्म-भावना ही भाऊँ।
गति-अपवर्ग न होवे जब तक भव-भव में यह वर पाऊँ।।2।।

जिनपथ में रुचि, विरति अन्य से जिनगुण स्तवन मैं अति लीन।
निष्कलंक निर्दोष भावना हो मेरी भव-भव में पीन।।3।।

गुरु-चरणों में यति समूह में जिनशासन का हो जय-घोष।
भव-भव में हो प्राप्त मुझे संन्यास पूर्वक देह-वियोग।।4।।
जन्म-जन्म में किये पाप जो कोटि जन्म से संचित हैं।
जन्म-मृत्यु अरु जरा मूल जो, जिन वन्दन से शीघ्र नशें।।5।।

सेवार्पित भक्तों के है जो, कल्पबेलि तव चरण-कमल।
उनकी सेवा में बीता है, बचपन से अब तक का काल।।
हे प्रभु! प्राण-प्रयाण क्षणों में मेरा कण्ठ न हो असफल।।
नाथ! आपके नाम कथन में चाहूँ आराधन का फल।।6।।

तेरे चरण-युगल मम उर में, मम उर भी तव चरणों में।
सदा बसें हे जिनवर! जब तक मुक्ति-लक्ष्मी प्राप्त हमें।।7।।

जिन-भक्तों की भक्ति मात्र ही कुगति निवारण में पर्याप्त।
भरे पुण्य भण्डार और शिव-पद प्रदान में पूर्ण समर्थ।।8।।

पंचमेरु संबंधी पाँच अरिंजय जिन मतिसागर पाँच।
पाँच यशोधर जिनवर वन्दूँ, वन्दूँ जिन सीमन्धर पाँच।।9।।

रत्नत्रय को नमन करूँ, चौबीस जिनेश्वर को वन्दूँ।
पंच परमगुरु को वन्दूँ मुनि चारण-चरण सदा वन्दूँ।।10।।

आत्मब्रह्म का वाचक अथवा परमेष्ठी पद का वाचक।
सिद्धचक्र के बीजभूत अर्हं अक्षर का ध्यान करूँ।।11।।

अष्टकर्म से मुक्त हुए जो मुक्ति श्री के भव्य सदन।
सम्यक्त्वादि गुणों से भूषित सिद्धचक्र को करूँ नमन।।12।।

सुर-संपति का आकर्षण है, मुक्तिश्री का वशीकरण।
चहुँगति विपदा का उच्चाटन पापों का है नाशकरण।।

दुर्गति का रोधक स्तम्भन मोह हेतु सम्मोहन मन्त्र।
नमस्कार परमेष्ठी वाचक मम रक्षक हो आराधन।।13।।
इस संसार अनन्तानन्त जन्म-संतति के छेदक हैं।
जिन-पद-पंकज का सुमरन ही शरणभूत है सदा मुझे।।14।।
तुम बिन नहीं शरण है कोई एक मात्र हो शरण तुम्हीं।
अत: जिनेश्वर! करुणा करके रक्षा करो सदा मेरी।।15।।
नहीं नहीं है नहीं अरे! रक्षक कोई इस त्रिभुवन में।
वीतराग जिनदेव सिवा, नहिं हुआ और होगा जग में।।16।।
जिनवर भक्ति जिनवर भक्ति जिनवर भक्ति प्रतिदिन हो।
सदा मुझे हो सदा मुझे हो सदा मुझे हो भव-भव में।।17।।
हे जिन! तेरे चरण-कमल की भक्ति सदा ही मैं चाहूँ।
पुन:-पुन: तव चरणों की ही भक्ति सदा ही मैं चाहूँ।।18।।
विघ्न समूह, शाकिनी एवं भूत, सर्प हों विलय सभी।
विष भी हो जाता है निर्विष, स्तुति करें जिनेश्वर की।।19।।

(कायोत्सर्ग करें)

अंचलिका

यह समाधि भक्ति करके अब मैंने कायोत्सर्ग किया।
इसमें लगे हुए दोषों का अब मैं आलोचन करता।।
रत्नत्रय के प्रतिपादक अरु परमातम के ध्यान स्वरूप।
शुद्ध आत्मा की करता मैं सदा वन्दना मंगलरूप।।
सदा अर्चना पूजन वन्दन नमन करूँ हों सब दुख क्षय।
बोधिलाभ हो सुगतिगमन हो जिनगुण संपति हो अक्षय।।

10. लघु चैत्य भक्ति

भरतादिक के गिरि-शिखरों पर पंचमेरु नन्दीश्वर में।
जितने चैत्यालय त्रिलोक में नमन करूँ जिन-चरणों में।।1।।

पृथ्वी तल पर कृत्रिम अकृत्रिम व्यन्तर भवनवासि दिवि में।
यहाँ मनुजकृत, सुरपति वन्दित जिन चैत्यालय को वन्दूँ।।2।।

जम्बू-धातकि-पुष्करार्ध के ढाई द्वीप में जो विचरें।
चंद्र, कमल अरु मोरकंठ, कंचन, मेघों सम कान्ति धरें।।
सम्यग्ज्ञान चरित लक्षण धर भस्म करें कर्मेन्धन को।
भूत भविष्यत वर्तमान के वन्दूँ सर्व जिनेश्वर को।।3।।

पंचमेरु अरु कुलाचलों, विजयार्धों, जम्बू, शाल्मलि पर।
चैत्यवृक्ष, वक्षार, रुचकगिरि, रति, कुण्डल, मनुजोत्तर पर।।
इष्वाकार गिरि, अंजन, दधिमुख, व्यन्तर सुर लोकों में।
ज्योतिर्लोक, भवन, भूतल पर जिनमंदिर को नमन करूँ।।4।।

इन्द्र, नरेन्द्रों, असुरेन्द्रों से धरणेन्द्रों से पूजित हैं।
पाप-प्रणाशक, भव्य-जनों का मन आकर्षित करते हैं।।
घंटा, ध्वजा, धूप-घट माला मंगल द्रव्य विभूषित हैं।
जग के सब जिन चैत्यालय को नितप्रति वन्दन करता मैं।।5।।

(कायोत्सर्ग करें)

अंचलिका

हे प्रभु! चैत्य भक्ति करके अब मैंने कायोत्सर्ग किया।
इसमें लगे हुए दोषों का अब मैं आलोचन करता।।
अधो-मध्य अरु ऊर्ध्व लोक के कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालय।
चतुर्निकायी सुर परिवार भक्ति से आते जिन-आलय।।1।।

दिव्य गन्ध, जल अक्षत दिव्य सुमन धूप फल अरु नैवेद्य।
नित्य वन्दना पूजा अर्चा नमस्कार करते सब देव।।
मैं भी नित्य वन्दना पूजा अर्चा करता, हों दुख-क्षय।
बोधिलाभ हो सुगतिगमन हो जिन गुण संपति हो अक्षय।।2।।

(59) श्री समवसरण स्तुति

(स्व. पण्डित हिम्मतभाई जेठालाल शाह विरचित गुजराती
'समवसरण स्तुति' का पद्यानुवाद)

मंगलाचरण

(दोहा)

धर्म-काल वर्ते अहो! धर्म-स्थान विदेह।
धर्म-प्रवर्तक बीस जिन, गर्जे नित्य सदेह।।1।।

समवसरण महिमा

(वीरछन्द)

जिनवर जहाँ सुशोभित हैं वह समवसरण अति शोभावान।
जिसकी लोकोत्तर शोभा से फीका पड़ता है सुरधाम।।
सुरपति की आज्ञा से धनपति रचना रचते रम्य महान।
स्वयं स्वयं की रचना लखकर स्वयं लहें आश्चर्य महान।।2।।

समवसरण विस्तार

(सोरठा)

भव्य अचिन्त्य महान, रत्नमयी रचना अहो।
जिनवर धर्म-स्थान, बारह योजन व्यास का।।3।।

धूलिसाल कोट

(वीरछन्द)

समवसरण को घेरे कंकण-सम यह धूलीसाल विशाल।
विविध वर्ण रत्नों की रज से रच कर जिसको देव निहाल।।
रत्नों से किरणों की बहुरंगी ज्योति अति फैल रही।
क्या यह इन्द्र-धनुष उतरा है सेवा करने जिनवर की?।।4।।

(दोहा)

धूलिसाल के सामने, मानस्तंभ हैं चार।
स्वर्णमयी अति उच्च हैं, मानी-मान निवार।।5।।

चैत्यप्रसाद भूमि

(वीरछन्द)

छत्र चँवर शोभें, भव्यों का करें निमन्त्रण, ध्वजा विशाल।
घंटे अरु वाजित्र बजें, सुरपति करते प्रतिमा प्रक्षाल।।
चहुँ दिशि वापी चार स्फटिक-तटयुत निर्मल नीर भरा।
भाव सहित वन्दूँ यह मानस्तम्भ मान सब गला रहा।।6।।

(हरिगीतिका)

जिनालय की भूमि अति पावन तथा दैवी अहो।
है अनेक जिनालयों की मनोहर रचना अहो।।
देव अरु मानव यहाँ प्रभु भक्ति-भीने हृदय से।
नृत्य करते, प्रभु चरण में चित्त को अर्पित करें।।7।।

खातिका भूमि

(दोहा)

जल से पूरित खातिका, शोभित वलयाकार।
हँसे तरंगों से सदा, जलचर रमें अपार।।8।।

(चौपाई)

निर्मल नीर सुतट मणियों का, क्या यह चन्द्रकान्तमणि द्रवता?
प्रभु-पूजन की उच्च भावना, ले मानो उतरी सुर-सरिता।।9।।

लता वन भूमि

(दोहा)

भव्य लतावन की धरा, चहुँ दिशि महके गन्ध।
खिले पुष्प ऐसे लगें, लता हँस रही मन्द।।10।।

(हरिगीतिका)

विविध रंगी पुष्प-रज उड़ती जहाँ गति-मन्द से।
जो ढाँकती वन गगन को नित सान्ध्य रवि के रंग से।।
दिव्य क्रीड़ा स्थल जहाँ पर लता मण्डप भव्य है।
शीतल शिला शशिकान्तमणि की इन्द्र विश्रांति लहें।।11।।

(चौपाई)

षट् ऋतु के सब फूल खिले हैं, मंद सुगंध पवन बहती है।
क्या सुगन्ध यह वन पुष्पों की? या सुकीर्ति है श्री जिनवर की।।12।।

स्वर्णमयी कोट

(दोहा)

स्वर्णमयी मणि जड़ित है, कोट अति उत्तंग।
कनक-प्रभा में मानिये, शोभित हैं नक्षत्र।।13।।

(वीरछन्द)

कर में शस्त्र लिये हैं सुरगण द्वारपाल बन खड़े हुए।
मंगल द्रव्य सुरम्य नवों-निधि तोरण भी हैं बँधे हुए।।
दोनों ओर द्वार के सुन्दर नाट्य भवन है स्फटिकमयी।
और दूर पर धूम्र-घटों की धूम गगन को ढाँक रही।।14।।

(हरिगीतिका)

यह नाट्य-शाला गूँजती वीणा मृदंग सु-ताल से।
गन्धर्व किन्नर गान से सुरकामिनी के नृत्य से।।
देवांगना जय-घोष करतीं हर्षमय नर्तन करें।
जिन-विजय का अभिनय करें कुसुमांजली अर्पण करें।।15।।

उपवन भूमि

(वीरछन्द)

चम्पक आम्र अशोक आदि वन भू की छटा मनोहर है।
रम्य नदी, तालाब, भवन अरु चित्रकला-गृह सुन्दर है।।

मन्द स्वरों में कोकिल कुहके वृक्ष फलों से लदे हुए।
प्रभु-चरणों में अर्पित करने अर्घ्य लिये वे खड़े हुए।।16।।

(त्रोटक)

बहु वृक्ष विशाल मनोहर हैं, रविकिरणों के अवरोधक हैं।
जगमग-जगमग अरु तेज महा, है दिन या रात न जाय कहा।।17।।
तहँ चैत्य तरु-तल दिव्य महा, जिनबिम्ब सुशोभित होय जहाँ।
सुरगण भक्ति से नाच रहे, जय-घोषों से वन गूँज उठे।।18।।

(दोहा)

रत्न जड़ित है स्वर्ण की कटि-करधनी समान।
शोभित है वन-वेदिका फिर ध्वज भूमि जान।।19।।

ध्वज भूमि

(हरिगीत)

है स्वर्ण के स्तम्भ पर ध्वज पंक्ति की शोभा महा।
कमल माला अरु मयूरादिक सुचिह्नों-युत अहा!।
क्या त्रिलोकीनाथ का यह विजय-ध्वज फहरा रही?
प्रभु पूजने के लिए अथवा जगत को बतला रही।।20।।

रजतमयी कोट

(दोहा)

चाँदी का यह कोट है, उन्नत कान्तिमान।
नाट्यग्रहों अरु लक्ष्मी से अति शोभावान।।21।।

कल्पवृक्ष भूमि

(त्रोटक)

यह कल्पतरु भू रम्य अहा, सुर-सरि भवनादिक स्वर्गसमा।
दशभेद अहो तरु-कल्प तले, निजधाम विसरि सब देव रमें।।22।।

मालांग तरु बहु-माल धरे, दीपांग तरु पर दीप जले।
पुष्पों-दीपों की माला से, वन पूज रहा क्या जिनवर को?।।23।।

सिद्धार्थ तरु अति दिव्य दिखें, जो मनवांछित फलदायक हैं।
छत्रत्रय शोभित हैं तरु पर, घंटा बाजे अरु फहरे ध्वज।।24।।

इस तरु-तल में सिद्धबिम्ब रहे, सुरलोक जहाँ प्रभुभक्ति करे।
कोइ स्तोत्र पढ़े, प्रभु गुण सुमरे, कोइ नम्रपने जिनराज नमे।।25।।

कोइ गान करे कोइ नृत्य करे, निर्मल जल से अभिषेक करे।
कोइ दिव्य दीप अरु धूपों से, अति-भक्ति से जिनराज भजे।।26।।

स्वर्णमयी वेदी

(दोहा)

फिर वन-वेदी स्वर्ण की, गोपुरादि संयुक्त।
अति सुन्दर प्रासादमय, भूमि रत्न स्तूप।।27।।

भवन भूमि

(चौपई)

स्वर्ण स्तम्भ मणिमय दीवार, चन्द्र समान भवन हैं चार।
देव रमें अरु चर्चा करें, नृत्य करें प्रभु गुण उचरें।।28।।

स्तूप

(हरिगीत)

है स्तूप अति ऊँचा मनोहर पद्मराग मणिमय अहा।
अरिहंत प्रभु अरु सिद्ध के बहु-बिम्ब से शोभित महा।।
सुर-असुर मानव भाव-भीने चित्त से पूजा करें।
अभिषेक नमन प्रदक्षिणा कर हर्ष बहु उर में धरें।।29।।

स्फटिक मणिमयी कोट

(दोहा)

स्फटिक मणिमय अहो!, सुन्दर अति उत्तंग।
पद्मराग के द्वार हैं, मंगल द्रव्य दिपंत।।30।।
रत्नों की दीवार हैं, रत्नों के स्तम्भ।
है इक योजन व्यास का, उन्नत मण्डप-रत्न।।31।।

श्री मण्डप भूमि बारह सभाएँ

(हरिगीत)

शोभित श्री मण्डप अहो! गणधर मुनि अरु आर्यिका।
तिर्यंच सुरगण और मानव की सुशोभित यह सभा।।
मृग-सिंह अरु अहि-मोर भी निज बैर को हैं भूलते।
सब शान्त चित् एकाग्र हो जिन-वचन-अमृत झेलते।।32।।
इस श्री मण्डप में अहो! नित पुष्पवृष्टि सुर करें।
क्या स्फटिक मणिमय गगन में तारे अहो नित नव उगें।।
किरणें रतन-दीवार की जो जल-तरंग समान क्या?-
जिनराज के उपदेश का अमृत-महोदधि उछलता?।।33।।

गन्धकुटी प्रथम पीठ

(हरिगीत)

वैडूर्य रत्नों से बनी यह पीठ पहली शोभती।
वसु द्रव्य मंगल और सोलह सीढ़ियाँ मन मोहतीं।।
यक्ष-गण के शीश पर है धर्मचक्र विराजता।
सहस आरों की प्रभा से सूर्य भी लज्जित हुआ।।34।।

द्वितीय पीठ

उस पीठ पर है पीठ स्वर्णिम अति मनोरम दूसरी।
मन मुग्धकारी पीत ज्योति चहुँ दिशा फैला रही।।

आठ ध्वज सुन्दर मनोहर चिह्न युत लहरा रहे।
सिद्ध प्रभु के गुण समान सुस्वच्छ सुन्दर शोभते।।35।।

तृतीय पीठ

विविध रत्नों से बनी यह पीठ मनहर तीसरी।
विविध रंगमयी सुरम्य प्रकाश यह फैला रही।।
दैवी सुमन हैं हँस रहे वसु द्रव्य मंगल शोभते।
चारों निकायों के अमर इस पीठ की पूजा करें।।36।।

(वीरछन्द)

गन्ध कुटी शोभे अति सुरभित पुष्प धूप की सौरभ से।
मोती की मालाएँ लटके नभ को रंगे रत्नद्युति से।।
रत्नमयी शिखरों पर मनहर लाखों ध्वज लहराते हैं।
सुन्दरता की अधिदेवी में जग वैभव झलकाते हैं।।37।।

(हरिगीत)

देवोपनीत सहस्रदल युत कमल जिस पर खिल रहा।
सुर-असुर और मनुष्य का मन मुग्ध अतिशय हो रहा।।38।।

जिनेन्द्र दर्शन

(त्रोटक)

चतुरांगुल ऊपर जिन शोभें, नर-इन्द्र सुरेन्द्र मुनीश जजें।
निर-आलम्बी जैसा आतम, बिन आलम्बी वैसा जिन-तन।।39।।

चँवर एवं छत्र प्रातिहार्य

(हरिगीत)

क्षीर-अमृत तुल्य उज्ज्वल चँवर चौंसठ जिन ढुरें।
मानो समुद्र तरंग, गिरि-निर्झर प्रभु सेवन करें।।

त्रय छत्र शोभें शीश पर जिन सुयश मूर्तिमन्त ज्यों।
मौक्तिक प्रभा है चन्द्र-सम रत्नांशु रवि भासित अहो।।40।।

अशोक वृक्ष प्रातिहार्य

(हरिगीत)

योजन विशाल अशोक तरुवर शोक तिमिर निवारता।
मणि स्कन्ध मणिमय पत्र अरु मणिपुष्प से शोभित अहा।।
झूलती बहु शाख अरु अलिगण मधुर गुंजन करें।
क्या वृक्ष हाथ हिला-हिला कर भक्ति से जिनवर भजें।।41।।

(त्रोटक)

चहुँ दिशि जिनवर के मुख दिखते, अशुचि नहीं दिव्य शरीर विषें।
नहिं रोग क्षुधा न जरा तन में, न निमेष अहो नयनाम्बुज में।।42।।
मणिपुंज सुधारस अरु शशि से, जिन-तन सुन्दरता अधिक लसे।
अति सौम्य प्रसन्न मुखाम्बुज में, भविनेत्र-अलि अति लीन हुए।।43।।

भामण्डल प्रातिहार्य

जिन-देह दिवाकर तेज विषें, रवि-शशि तारों का तेज छिपे।
रविबिंब प्रभा से अधिक कान्ति, श्री जिनवर के भामंडल की।।44।।
सुर-असुर तथा मानव निरखें, स्व-भवान्तर सात प्रमोद धरें।
जिनदेह प्रभा अति पावन में, जग के बहुमंगल दर्पण में।।45।।

दिव्यध्वनि देव-दुन्दुभि एवं पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य

घन-गर्जन वत् जिनवाणी झरे, भवि चित्त-चकोर सुनृत्य करे।
सुर-दुन्दुभि वाद्य बजें नभ में, हो पुष्प-वृष्टि बहु-योजन में।।46।।

दिव्यध्वनि महिमा

कर्णप्रिय प्रभु की ध्वनि सुनकर, गंभीर अहो! विस्मित गणधर।
ध्वनि वेग बहे भवि चित भींजे, शुचि ज्ञान झरे भवताप बुझे।।47।।

दिव्यध्वनि अक्षर एक भले, बहुरूप बने सब जीव सुनें।
जैसे निर्मल जल एक भले, तरु भेदों से बहु भेद लहे।।48।।

दिव्यध्वनि श्रमण का फल

वाणी सुनकर बहु ज्ञानी बनें, अणुव्रतधारी, निर्ग्रन्थ बनें।
निर्ग्रन्थ मुनी जिनध्वनि सुनकर, निज अनुभव धार अखंड करें।।49।।

सर्वज्ञता और वीतरागता का वर्णन

(हरिगीत)

मोह का अंकुर अहो! नहिं शेष रहता है जहाँ।
अज्ञान का भी अंश जलकर भस्मरूप हुआ वहाँ।।
निज दर्श आनन्द ज्ञान बल प्रकटे अनन्त अहो जहाँ।
जिनराज के पद-पंकजों में, स्थान मेरा हो वहाँ।।50।।

जिस व्योम में परमाणुवत् लघु यह जगत है भासता।
प्रकटा जहाँ परिपूर्ण ज्ञान-अनन्त लोकालोक का।।
त्रय-काल की पर्याय युत सब द्रव्य को युगपत् लखे।
अति नम्र होकर जिन-चरण में शीश यह मेरा झुके।।51।।

देवोपुनीत समवसरण से राग नहिं किंचित् अहा।
मलिन रजकण के प्रति नहिं द्वेष किंचित् भी रहा।।
समवसरण अरु धूल जिसमें ज्ञेय केवल हैं अहो।
जिनराज जी! उस ज्ञान को मम वन्दना शतबार हो।।52।।

शत इन्द्रगण निज शीश धरते हों चरण में भले युग-
इन्द्राणियाँ स्वस्तिक करती हों रतन-रज से भले।।

पर आपकी परिणति नहीं इन ज्ञेय के सम्मुख जरा।
निजरूप में डूबे हुए हो नमन तुमको जिनवरा।।53।।

जिनेन्द्र स्तवन

जग के अगाध तिमिर विनाशक सूर्य तुम ही हो प्रभो।
अज्ञान से अंधे जगत के नेत्र तुम ही हो विभो।।
भव-जलधि में डूबे जनों की नाव भी तुम ही अहो।
माता-पिता अरु गुरु सब कुछ हे जिनेश्वर! आप हो।।54।।

तीर्थ-कर्ता हे प्रभो! तुम जगत में जयवन्त हो।
ओंकारमय वाणी तुम्हारी जगत में जयवन्त हो।।
समवसरण जिनेन्द्र के सब जगत में जयवन्त हों।
अरु चार तीर्थ सदा जगत में भी अहो जयवन्त हों।।55।।

(दोहा)

समवशरण का शास्त्र में, वर्णन किया विशाल।
किन्तु कहा उस जलधि का, बिन्दु मात्र कुछ हाल।।56।।

बिन देखे समझें नहीं यह जिनवर का गेह।
भाग्य नहीं है भरत का बड़भागी क्षेत्र विदेह।।57।।

जिनागम की महिमा

(हरिगीत)

समवसरण जिनेन्द्र का हो यहाँ, नहिं यह भाग्य है।
साक्षात् जिनध्वनि का श्रवण भी हो, न ऐसा भाग्य है।।
तो भी सीमन्धर नाथ एवं वीर मंगल-ध्वनि की।
सुनी जाती गूँज है जिन आगमों में आज भी।।58।।

आश्चर्यजनक घटना

(दोहा)

विक्रम संवत् एक में, घटना इक सुखदायी।
जिससे ध्वनि विदेह की, भरत क्षेत्र में आई।।59।।

आचार्य कुन्दकुन्द को साक्षात् तीर्थंकर की विरह वेदना

(हरिगीत)

बहु ऋद्धिधारी कुन्दकुन्द मुनि हुए इस काल में।
श्रुतज्ञान में जो कुशल अरु अध्यात्मरत योगीश थे।।
साक्षात् श्री जिन-विरह की हुइ वेदना आचार्य को।
हा!हा! सीमन्धरनाथ का नहिं दरश है इस क्षेत्र को।।।60।।

विदेह गमन

(वीरछन्द)

अरे! अचानक बोल उठे 'सत् धर्मवृद्धि हो' श्री जिनराज।
सीमंधर जिन समवसरण में अर्थ न समझी सकल समाज।।
सन्धिविहीन ध्वनि सुनकर उस परिषद को आश्चर्य हुआ।
और दिखे तत्काल महामुनि मूर्तिमन्त अध्यात्म समान।।61।।

हाथ जोड़कर खड़े प्रभु को नमें भक्ति में लीन हुए।
नग्न दिगम्बर छोटा-सा तन विस्मित थे सब लोग हुए।।
विस्मय से चक्री पूछें हे नाथ! कहो ये कौन महान।
हैं समर्थ आचार्य भरत के करें धर्म की वृद्धि महान।।62।।

(दोहा)

जिनवर की यह बात सुन, हर्षित सकल समाज।
ऐलाचार्य सभी कहें, छोटे-से मुनिराज।।63।।

भरत क्षेत्र में पुनरागमन

(हरिगीत)

प्रत्यक्ष जिनवर दर्श कर बहु हर्ष ऐलाचार्य को।
ॐकार ध्वनि सुनकर अहो अमृत मिला मुनिराज को।।
सप्ताह एक ध्वनि सुनी श्रुतकेवली परिचय किया।
शंका निवारण सभी कर फिर भरत पुनरागम हुआ।।64।।

आचार्य कुन्दकुन्द की महिमा

(रोला)

गुरु-परम्परा से जो वीर-ध्वनि है पाई।
जा विदेह दिव्यध्वनि झेली खुद भी भाई।।
मुनिवर ने है वही लिखा इन परमागम में।
कुन्दकुन्द का अति उपकार भरत-भूतल में।।65।।

हो सुपुत्र तुम भरत क्षेत्र के अन्तिम जिन के।
महाभक्त हो क्षेत्र विदेह प्रथम जिनवर के।।
हो सुमित्र भव में भूले हम भव्य जनों के।
कुन्दकुन्द को बार-बार वन्दन हम करते।।66।।

तीर्थंकर देव, जिनवाणी, आचार्य कुन्दकुन्द एवं पूज्य गुरुदेवश्री का उपकारोल्लेख

(दोहा)

नमूँ तीर्थ-नायक प्रभो!, वन्दूँ ध्वनि ॐकार।
कुन्दकुन्द मुनि को नमूँ, जिन झेला ॐकार।।67।।

जिनवर-ध्वनि, मुनि कुन्द का, है उपकार महान।
कुन्द-ध्वनि दातार जो, उपकारी गुरु कहान।।68।।

*****

स्व. पण्डित हिम्मतभाई जेठालाल शाह, सोनगढ़ विरचित

(60) श्री समयसार-स्तुति

(पद्यानुवाद)

(वीरछन्द)

संसारी जीवों के भाव-मरण क्षय-हेतु हुई करुणा।
वीर प्रभु ने करी प्रवाहित संजीवनी सुधा-सरिता।।
लगी सूखने जब सरिता तब करुणा-रस उर में उमड़ा।
समयसार-भाजन में मुनिवर कुन्दकुन्द ने उसे भरा।।

कुन्दकुन्द ने ग्रन्थ रचा स्वस्तिक करते मुनि अमृतचन्द्र।
हे ग्रन्थाधिराज! तुझमें हैं भाव भरे ब्रह्माण्ड सकल।।

तेरी वाणी में उपशम रस भावों का झरना झरता।
अंजलि भर-भर अमृत-रस को सकल मुमुक्षु-जग पीता।।
जो अनादि की विषमय मूर्च्छा शीघ्र उतरने लगी अहो!
परभावों से हटकर परिणति निज स्वरूप में तन्मय हो।।

व्यवहाराश्रित भंगों का भेदक हे निश्चय ग्रन्थ प्रधान!
तू ही प्रज्ञा-छैनी अनुपम ज्ञान-राग को भिन्न बखान।।
साधक का साथी अरु जग का सूर्य, वीर प्रभु का संदेश।
दुखी हृदय को शरण-प्रदाता शिवपुर का पथ तू ही एक।।

कर्म-बन्ध रस ढीला होता समयसार को सुनने से।
ज्ञानीजन का हृदय जानते जो जन समयसार जानें।।
समयसार की रुचि होते ही विषयों की रुचि होय विनष्ट।
जिस पर समयसार रीझे तो उस पर ज्ञायकदेव प्रसन्न।।

तप्त स्वर्ण के पत्रों पर यदि रत्नों के अक्षर लिख दें।
तो भी कुन्दकुन्द के सूत्रों का मूल्यांकन हो न सके।।

स्व. पण्डित हिम्मतभाई जेठालाल शाह, सोनगढ़ विरचित

(61) पूज्य गुरुदेवश्री अभिनन्दन

(पद्यानुवाद)

इस भवदधि से तरने हेतु जिनवाणी नौका सुखकार।
किंतु कुशल नाविक बिन कोई नौका भी नहिं तारणहार।।
शुद्धातम के ज्ञानी नाविक मिलना दुर्लभ है इस काल।
पुण्य राशि फल गई हमारी गुरु कहान-सा नाविक पा।।1।।

सीमन्धर अरु वीर-कुन्द के भक्त अहो! शुद्धातम के।
अन्तर्बाह्य विभव से पार उतारें नाव मुमुक्षु की।।2।।

दृष्टि आपकी सदा निरखती निज निर्मल चैतन्य निधान।
और ज्ञप्ति में विलसित होते द्रव्य तथा सब गुण पर्याय।।
निज-आलम्बी भावों से परिणति स्वरूप में होती लीन।
चिद्घन में नहिं दिखते कोई भी व्यवहार-निमित्त कभी।।3।।

उर में सदा ज्ञान सत् धड़के वज्र वचन खिरते सुखकार।
सत्त्व प्रकाशित करें मुमुक्षु पर से मोह हटे दुखकार।।
राग-द्वेष की रुचि नहिं इन्द्रियज्ञान अंश में चैन रहीं।
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान की महिमा उर में उछल रही।।4।।

शाश्वत झरते सुधा-चन्द्र को नमन करूँ मैं बारम्बार।
बिन कारण करुणा के सागर नमन करूँ मैं बारम्बार।।
ज्ञान-धान्य पोषक सु-मेघ को नमन करूँ मैं बारम्बार।
अहो दास के जीवन शिल्पी नमन करूँ मैं बारम्बार।।5।।

अन्तस्तल की गहन गुफा से सुखनिधि सत् वायु बहती।
चिन्मूरत वाणी अनुभव गर्भित भावों से भरी हुई।।
गहन विचार नित नई महिमा की तरंग चित् में उठती।
मानो खोया रत्न मिल गया मन की इच्छा शमन हुई।।6।।

पण्डित अभयकुमार जैन

जन्म – 17 जुलाई 1952

जन्मस्थान – जबलपुर (म.प्र.)

शिक्षा – एम. कॉम, जैनदर्शनाचार्य

सन् 1968 से 1980 तक आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी का प्रतिवर्ष स्वर्णपुरी में प्रत्यक्ष समागम।

कार्य –

* सन् 1981 से 1998 तक श्री टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में अध्यापन
* 1998 से 2004 तक छिंदवाड़ा में रहकर तत्त्वप्रचार।
* 2004 से निरन्तर देवलाली में रहकर तत्त्वप्रचार।
* 1999 से 2011 तक प्रतिवर्ष अमेरिका, लन्दन, कनाडा इत्यादि अनेक स्थानों पर प्रवचनार्थ यात्राएँ।

विशेष – भक्ति सरोवर में आध्यात्मिक गीतों का लेखन एवं संकलन।

आगम पद्यानुवाद –

1. आत्मानुशासन 2. लघुतत्त्वस्फोट 3. पंचास्तिकाय 4. कार्तिकेयानुप्रेक्षा 5. भगवती आराधना 6. पद्मनन्दी पंचविंशतिका 7. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय 8. रत्नकरण्ड श्रावकाचार 9. उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला 10. दशभक्ति संग्रह 11. समयसार कलश 12. प्रवचनसार कलश 13. नियमसार कलश 14. पंचास्तिकाय कलश 15-19. पंच परमागम ग्रन्थ 20. तत्त्वार्थसूत्र 21. रत्नत्रय विधान 22. द्रव्य संग्रह 23. परीक्षामुख 24. आप्तपरीक्षा 25. पंचाध्यायी 26. परमात्मप्रकाश 27. पाहुड़ दोहा 28. आराधनासार 29. स्वरूप संबोधन 30. परमानन्द स्तोत्र

स्वतन्त्र कृतियाँ –

1. क्रिया, परिणाम और अभिप्राय 2. क्रमबद्धपर्याय निर्देशिका 3. नय-रहस्य

सम्पादित कृतियाँ – नियमसार नवनीत, कलशामृत रहस्य

विधान रचना –

पाँचों परमागम एवं तत्त्वार्थ सूत्र के वृहद् विधान-लघु विधान, षट्खण्डागम-श्रुतपंचमी विधान, सर्वज्ञदेव विधान, सहज शान्ति विधान, लघुतत्त्वस्फोट विधान, पंचपरमेष्ठी विधान

* छहढाला, मोक्षमार्ग प्रकाशक, आत्मानुशासन, लघुतत्त्व स्फोट, नय-रहस्य, समयसार, प्रवचनसार, अष्टपाहुड़ आदि ग्रन्थों के पंक्तिबद्ध एवं क्रमबद्धपर्याय, क्रिया-परिणाम-अभिप्राय आदि विषयों के लगभग 3000 पंक्तिबद्ध प्रवचन यूट्यूब **Pt. Abhay Ji Devlali** चैनल पर एवं टेलीग्राम पर उपलब्ध हैं।